प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन
मालीवाडा, दिल्ली।

मूल्य तीन रुपया

केशव की कविता के अनन्य प्रशंसक

तथा

व्रजभाषा-साहित्य एवं काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ

आचार्य डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

को

सादर समर्पित

उपक्रमणिका

पूर्व वचन

सन् १९४९ मे प्रयाग-विश्वविद्यालय में हिन्दी-साहित्य के विविध विषयों का अध्ययन करते हुए मुझे केशवदास जी के काव्य का 'विशेष अध्ययन' करना पड़ा। यह अध्ययन ब्रजभाषा तथा रीति साहित्य के आचार्य डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' के निर्देशन मे हुआ। उनके संसर्ग से केशव की 'कठिन' कही जाने वाली कविता मे कुछ गति हुई। प्रस्तुत आलोचना का मूल स्वरूप तो वह है जो उस समय तैयार किया गया था किन्तु उस पर नवीन अध्ययन एवं अनुसंधान द्वारा प्राप्त सामग्री का इतना योग कर दिया गया है कि ग्रंथ के मूल रूप का कायाकल्प सा हो गया है। अब यह कृति हिन्दी प्रेमियों की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए मुझे विशेष आनंद का अनुभव हो रहा है। इस अवसर पर मैं अपने सहयोगी और मित्र श्री दीपचन्द जैन का आभारी हूँ जिन्होंने इस आलोचना को प्रकाशनार्थ प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी है।

हिन्दी विभाग, दरबार-कालेज, रीवाँ। विनीत—

(विन्ध्य-प्रदेश १ जनवरी, १९५६ कृष्णचन्द्र वर्मा

रीति काव्य की पृष्ठ-भूमि

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने प्रायः एक मत होकर यह मान लिया है कि रीतिकाव्य का समय (उत्तर मध्य युग) सं० १७०० से १६०० तक है, अर्थात् सन् १६४३ से १८४३ तक। यह काल-निर्णय साहित्य की धाराओ और प्रवृत्तियों का ध्यान रखकर किया गया है और अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे मानने में कोई आपत्ति भी न होनी चाहिए। निश्चित रीति से तो किसी भी काव्य-काल के प्रारंभ और समाप्ति की तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती। यह कौन कह सकता है कि रीति-कालीन प्रवृति वाले कवि आज नहीं हैं, अथवा केशवदास के पहले नही थे। ठीक यही बात भक्ति-काव्य के लिए भी कही जा सकती है। सच तो यह है कि साहित्य की प्रवृत्तियाँ राग या अंतस से संबंध रखती हैं और इसी कारण सर्वकालिक हुआ करती हैं और इस कारण समय की रेखा मे उनका पार्थक्य निर्धारित नही किया जा सकता। इतना अवश्य है कि किसी युग विशेष में किसी राग अथवा रस विशेष को कवियो से विशेष प्रश्रय प्राप्त हुआ और फलस्वरूप काव्य मे उसकी प्रधानता हो गई। इसी प्रधानता के आधार पर युगों का नामकरण कर दिया गया। जिस वातावरण मे हमारा रीति-काव्य प्रणीत हुआ है, हमें पहले उस पर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

राजनैतिक दशा—सन् १६४३ में शाहजहाँ दिल्ली का शासक था। समूचे भारतवर्ष के एक विशाल भाग पर उसका आधिपत्य था। पश्चिम में सिन्ध, पूर्व में आसाम, उत्तर (पश्चिम) में अफगानिस्तान तथा दक्षिण में औसा उसके साम्राज्य की सीमाएँ थीं। यह मुगल साम्राज्य की समृद्धि का युग था। वैभव और शक्ति की कमी न थी। स्थापत्य, शिल्प, चित्र आदि कलाओं का ऐसा उत्कर्ष परवर्ती इतिहास में फिर देखने को न मिला। मयूर सिंहासन और विश्व-विश्रुत ताज इसी काल की अमर कृतियाँ हैं। किन्तु जहाँगीर और शाहजहाँ के बाद इस शान्ति, सुख और उत्कर्ष की परंपरा न चल सकी। शाहजहाँ के जीवन-काल

में ही राजसिंहासन के लिए उसके पुत्रों में आपस में युद्ध हुआ। दारा शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र उदार और लोकप्रिय था। औरंगजेब कठोर और दृढ़ था, तथा कूटनीतिज्ञ भी। दुर्भाग्य से 'दारा की पूर्ण पराजय हुई—देश ने इस लोक-प्रिय राजकुमार के वध का लोमहर्षक नाटक अपनी आँखों से देखा। उन्होंने देखा मानो नैतिक और धार्मिक विश्वासों को पैरों तले कुचलता हुआ औरंगजेब भाइयों के खून में रँगकर सिंहासन तक पहुँच गया है और गर्व से उस पर आसीन है।'*

यह घटना सन् १६५८ की है। इसके बाद औरंगजेब ने लगभग ५० वर्षों की विस्तृत अवधि तक राज्य किया। किन्तु उसका राज्य-काल घोर अशांति, संघर्ष और विप्लव का काल है। अपने शासन-काल के प्रथमार्ध में उसने जमींदारों, राजाओं और हिन्दू उपद्रवियों का दमन किया तथा हिन्दुओं से बदला लेने के लिए मथुरा में केशवदास का तथा काशी में विश्वनाथ का मंदिर नष्ट करके समग्र हिन्दू-जाति की शत्रुता मोल ली।

इन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भूषण की शिवा-बावनी में मिलता है :—

दारा की न दौरि यह रारि नाहिं खजुए की,
बाँधिबो न होय यह मुरादसाह बाल को।
मठ बिस्वनाथ को, न बास ग्राम-गोकुल को,
देबी को न देहरा, न मंदिर गुपाल को॥

बुन्देलखण्ड के वीर चम्पतराय और उनके पुत्र छत्रसाल ने आजीवन मुगलों का विरोध किया। 'राजपूताना में मारवाड़ के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर अशान्ति फैली हुई थी। अब तक राजपूताने के प्रमुख राज्य मुगलों की निष्कपट रूप से सेवा करते रहे थे—जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह और जयपुर के मिर्जा जयशाह ने साम्राज्य की ओर से युद्ध करते हुए ही अपने प्राण गँवाए थे। राजा

*रीति-काव्य की भूमिका पृ०—२. डा० नगेन्द्र।

जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त औरंगजेब ने जयपुर पर अधिकार कर लिया। जिसके कारण मारवाड और मेवाड मुगलों के विरुद्ध हो गए।*

पंजाब में सिक्खों ने विद्रोह प्रकट किया। गुरु तेगबहादुर की हत्या तथा गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों को दीवार मे चुनवा कर औरंगजेब ने उनके क्रोध की आग भडका दी। सिक्ख लोग सैनिक दल (जत्थे) के रूप में संगठित होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता के लिए लडने लगे। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के कारण दक्षिण के शिया राज्य उसके विपरीत थे ही। उधर समर्थ गुरु रामदास की प्रेरणा से मरहठा वीरों ने छत्रपति शिवाजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित हो कर मुगलो पर इक्के-दुक्के आक्रमण करने शुरु कर दिए। फलस्वरूप मुगल-वाहिनी के भी छक्के छूट गए। इतना ही नहीं शिवाजी की सहसा-आक्रमण की युद्ध-नीति से सदा मुगलो मे आतंक और त्रास छाया रहता था। यह ऐतिहासिक सत्य है जिसे साहित्य-प्रणेता भूषण ने काव्य का रूप दिया है:—

सब उमराव मिलि एकमत ठानि कहैं,
आइकै समीप अवरंग सिरताज पै।
भीख माँगि खैहैं विन मनसब रैहैं,
पै न जैहै हजरत महाबली सिवराज पै॥

(शिवाबावनी—छन्द ३५)

× × × ×

साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं।
बीजापुर, गोलकुंडा, आगरे, दिल्ली के कोट,
बाजे-बाजे रोज दरवाजे उघरत है॥

(शिवाबावनी—छन्द ३०)

मरहठा वीरो के इस राष्ट्रीय जागरण का हिन्दी काव्य-रचना के प्रदेशों में दूरी के कारण कोई प्रभाव न पड सका। अपने शासन-काल के द्वितीयार्ध में

*रीति काव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र, पृ० ३

औरंगजेब का ध्यान दक्षिण पर केन्द्रित रहा इससे उत्तरी प्रदेशो में अव्यवस्था ही बनी रही। औरंगजेब की अहम्मन्यता और स्वेच्छाचारिता से शासन-व्यवस्था की नस-नस ढीली हो गई थी और इसी से उसकी मृत्यु (सन् १७०७) के बाद उसका इतना बड़ा साम्राज्य टूट कर टुकड़े-टुकडे हो गया।

केन्द्र में एक शक्तिशाली शासक के अभाव से घोर अशाति और अव्यवस्था को जन्म मिला। केन्द्रीय शासन के ढीलेपन से प्रादेशिक राज्यों मे उच्छृंखलता आई। मुगल दरबार अमीर-उमरावों के स्वार्थ-साधन का अखाड़ा बन चला। आगरा और राजपूताना में जाट और राजपूतों का विद्रोह, उत्तर में सिक्खों का बढ़ता हुआ प्रभुत्व, दक्षिण मे मरहठा वीरो का राज्य-विस्तार किसी के रोके न रुका। कितने ही मुगल-शासकों ने मराठों को चौथ देना कबूल कर लिया। उधर यूरोप की व्यापारिक कपनियो ने देश की परिस्थिति का लाभ उठाया। अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों का दक्षिण मे धीरे-धीरे प्रभुत्व जमने लगा। यही समय था जब देश पर बाहरी हमले हुए। नादिरशाह (सन् १७३८) और अहमदशाह अब्दाली (सन् १७६१) के आक्रमणों से देश की समूची शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। नैतिक बल का तो ह्रास हुआ ही और उधर औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता ने हिन्दू और मुसलमानों को सदा के लिये एक दूसरे का शत्रु बना दिया। ऐसी स्थिति का अंग्रेज़ों ने लाभ उठाया। व्यापार छोड़ वे देश की राजनीति में भाग लेने लगे। उन्होंने फ्रांसीसियों को हराया। उनकी युद्ध-पद्धति देशी युद्ध-प्रणाली से अच्छी थी। 'बंगाल में सिराजुद्दौला की निर्बलता से उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला को हराकर क्लाइव ने भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली। मराठों और सिक्खों की शक्तियाँ उनकी उन्नति में प्रतिरोध उपस्थित करती थी। लार्ड वेलेज़ली के समय मे मराठे उत्तर भारत मे शक्तिहीन हो गए थे और महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु (सन् १८३९) के बाद सिक्खों की शक्ति भी क्षीण पड़ गई। सन् १८४८ के सिक्ख युद्ध में अंग्रेज़ों की विजय हुई और सिक्ख साम्राज्य का अंत हो गया। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र और सिंध नदियों के बीच का भारत अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गया।'*

*डा० श्यामसुन्दरदास—हिन्दी-साहित्य

'इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सारा काल मुगल साम्राज्य के क्रमिक ह्रास, हिंदू-शक्तियों के उत्थान और पतन तथा अंग्रेजी शक्ति के क्रमिक विकास का इतिहास है । आये दिन युद्धों के नीचे निष्प्राण भारतीय जनता का व्यक्तित्व पद-दलित हो रहा था ।'* शक्ति की कमी से नैतिक बल में भी कमी आने लगी, चरित्र गिरने लगा और यह सब इतनी मात्रा में हुआ कि पतन के अलावा और कुछ सूझता ही न था । हमारे भक्त कवियों ने जन-समाज में पौरुष की अपेक्षा दीनता का संचार किया और रीति-काल के शृंगारिक कवियों ने चरित्र-निर्माण में ध्यान न देकर कामुकता और वासना का संचार करने वाला साहित्य प्रस्तुत कर देश की जनता का निश्चय ही अहित किया । हिन्दू नरेशों और आश्रयदाताओं में भी वही विलास जर्जरता थी जो मुसलमान शासकों में, फिर फूट और पारस्परिक कलह के कारण शक्ति का भी क्षय हुआ । साहित्य ने जनोद्धार का बीड़ा नहीं उठाया, समाज की उपेक्षा की और साहित्यकार साहित्य के महत्तर लक्ष्य से विमुख हो अन्धगति से अपनी-अपनी मौज की धार में बहा । कलात्मक चमत्कार और काव्य-कौशल प्रदर्शन में वह भले ही दत्तचित्त हुआ, साहित्य के कलापक्ष के उत्कर्ष में भले ही उसने अभूतपूर्व योग दिया; किन्तु उसके द्वारा साहित्य का स्वस्थ विकास न हो सका ।

इतना अवश्य है कि इस उत्तर मध्यकाल की राजनैतिक हलचलों से इस काल का हिन्दी-साहित्य सीधे-सीधे प्रभावित नहीं हुआ, क्योंकि जो युद्ध और विग्रह, अशान्ति और अव्यवस्था थी; वह हिन्दी प्रदेश से दूरस्थ प्रान्तों में ही हुई । इस काल में साहित्य-सृजन के केन्द्र थे—अवध, बुन्देलखंड और राजस्थान । वीरता की उमंग भरने वाले कवियों की संख्या उँगली पर ही गिनी जा सकती है । समूची राजनैतिक परिस्थिति का इस काल के व्यक्तित्व पर जो प्रभाव पड़ा वह इन चार शब्दों में बाँधा जा सकता है—अहंकार, संकीर्णता, कायरता और विलासिता । छत्रसाल, शिवाजी और रणजीतसिंह ऐसे कुछ वीरों तक ही वीरता शेष रह गई थी, औरों में तो वीरता का दंभ-मात्र था । किसी में इतनी बुद्धि भी तो न थी कि

*डा० रामरतन भटनागर—हिन्दी साहित्य ।

संगठित होकर विदेशी शक्तियों की नीव उखाड़ फेंकते। सब अपने-अपने जीवन और अस्तित्व के लोभी हो रहे थे तथा मुगलों के जाम और साकी की देखा-देखी खुद भी संभोग और विलास के उपकरणों के बीच दिन में रात का मजा लिया करते थे। यह प्रवृत्ति पूरे दो सौ वर्षों तक बनी रही। रीति काल के प्रारंभ एवं अवसान काल के दो ऊँचे कवियों के उदाहरण प्रमाण रूप में आवश्यकता से अधिक होंगे—

ग्रीष्म वर्णन—*सुन्दर बिराजै राजमंदिर सरस, ताके,*
बीच सुखदैनी, सैनी सीरक उसीर की।
उछरै सलिल, जलजंत्र ह्वै बिमल उठैं,
सीतल सुगंध मंद लहर समीर की॥
भीने है गुलाब तन सने हैं अरगजा सौ,
छिटकी पटीर नीर टाटी तीर-तीर की।
ऐसे बिहरत दिन ग्रीषम के बितवत,
'सेनापति' दंपति मया तैं रघुबीर की॥

शिशिर वर्णन—*गुलगुली गिलमैं गलीचा हैं गुनीजन हैं,*
चाँदनी है, चिक हैं, चिरागन की माला है।
कहै 'पद्माकर' त्यों गजक गिजा है सजी,
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं॥
सिसिर के पाला को न ब्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला है।
तान तुक ताला है बिनोद के रसाला हैं,
सुबाला है दुसाला है बिसाला चित्रसाला है॥

सामाजिक दशा—शाहजहाँ का युग वैभव और ऐश्वर्य का युग था, जब कि विविध रत्नों और मोतियों की प्रभा से सारा राजसदन जगमग रहता था। इत्रादि की सुरभि से समस्त वातावरण ओत-प्रोत रहता था। यह सच है कि उसके पास इन्द्र और कुबेर का वैभव था। राज्य के अमीर-उमरावों की संपन्नता का भी

क्या कहना ? साहूकार और व्यापारी-वर्ग अथवा राज्य के छोटे-छोटे कर्मचारियों की दशा अवश्य ही साधारण थी, किन्तु सबसे दयनीय दशा थी चिरशोषित श्रमिक वर्ग की। वे एक ही बार के भोजन के अधिकारी थे। उनके द्वारा अर्जित देश का धन सामन्तों के प्यालों मे नर्तकियों और वेश्याओं के कीमती हाथो से मदिरा बन कर ढला करता था। श्रमिक-वर्ग अपने अथक् परिश्रम का परिणाम पाता या कोड़ों की मार खाकर। इनसे बेगार में काम लिया जाता था। बनजारे, सिपाही और डाकू इनकी खड़ी फसलों को रौंदते हुए चले जाते थे किन्तु इन दीनो की आह का महत्व अरण्य-रोदन से अधिक न था। भयंकर अकाल और रोग के शिकार यदि होते थे तो ये ही। वास्तव मे श्रमिक-वर्ग इस मुगल शासन का सबसे बड़ा अभिशाप था।

उधर राजमहलों मे रग-केलि का रोज ही आयोजन होता था। शाहजहाँ ने अपने अमीर और उमरावो की आदत बिगाड़ दी थी। वह औरंगजेब के भी रोके न रुकी। विलास-जर्जर-जाति पतन के गढे में अंधगति से जा रही थी। राजमहलों मे भिन्न-भिन्न वर्णों और जातियो की सहस्रों स्त्रियाँ रहती थीं जो शहज़ादियों का मनोरजन करती थीं और रात्रि में उमरावों और रईसों की अंकशायिनी बनती थीं।

औरंगजेब के बाद मुगल-वैभव समाप्त हो चला और अब समृद्धि के अभाव मे भी लोगो ने रईसी का प्रदर्शन प्रारभ किया। यह घोर पतन की निशानी थी। इनकी इन्द्रिय-लिप्सा और वेश्यागामिता बढ़ती ही गई जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना न रह सका।

चरित्र और नैतिकता का सभी दृष्टियों से पतन हुआ। अंधविश्वास, रिश्वत, ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, षड्यन्त्र, आवारापन, चलती सड़कों पर स्त्रियों से छेड़-छाड़ आदि सब कुछ होने लगा। हरमो में ऐसी स्त्रियो को प्रवेश मिलता था जो जाल और फरेब से भोली-भाली बालिकाओं और युवतियों को फँसा लाती थीं। वेश्याओं के कटाक्ष-बाणों से आहत अमीर मदिरा की खुमारी मे डूबते उतराते रहते थे। इन वेश्याओं के कटाक्षों से हमारे साहित्यकार भी विद्ध हुए—

यौं अलबेली अकेली कहूँ सुकुमार सिंगारन कै चलै कै चलै।
त्यौं 'पदमाकर' एकन के उर में रस बीजनि व्वै चलै व्वै चलै॥

एकन सों बतराय कछू छिन एकन कौ मन लै चलै लै चलै।
एकन सों तकि घूँघट में मुख मोरि कनैखनि दै चलै दै चलै॥
(पद्माकर)

जहाँ देश और समाज की ऐसी दशा थी वहाँ कवियो की स्थिति किस प्रकार भव्य हो सकती थी। कवि समाज के प्रभावों से पृथक नहीं रह सकता था। प्रायः कवि और कलाकार निम्न अथवा मध्यवर्ग में जन्म लेता था और किसी हिन्दू या मुसलमान राजा रईस के आश्रय में रह कर अपनी काव्य-क्षमता से उसका मनोरंजन करता था। औरंगजेब के बाद तो देश की शक्ति का विकेन्द्रीकरण हुआ और फलस्वरूप छोटे-मोटे राजा-रईसों का आश्रय पा किसी प्रकार इन कवियों का जीवन चलने लगा। आश्रयदाता के ठीक न होने पर कवि बेचारे को ठौर-ठौर भटकना पड़ता था। आखिर राजा रईसों की दृष्टि ही तो ठहरी, किसी भी बात पर उनकी भौंहें टेढ़ी हो सकती थी। स्वयं 'देव' ऐसे महाकवि जमकर किसी राज्य में न ठहर सके। एक-एक दोहे पर स्वर्ण-मुद्राएँ पाने वाले बिहारी ऐसे कवि पर भी महाराज जयसिंह खुश न रह सके और बिहारी को लिखना पड़ा :—

स्वारथ सुकृत न श्रमु बृथा देखु बिहंग बिचारि।
बाज पराए पानि पर तू पंछीनु न मारि॥

मुहम्मदशाह रँगीले ने घनानन्द ऐसे जन्मजात प्रतिभा वाले कवि को अपने यहाँ से निकाल दिया था यह प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार समाज की स्थिति के अनुरूप ही कलाकारों की भी स्थिति कोई सन्तोषजनक नहीं थी।

देश की दो प्रधान जातियों-हिन्दुओ और मुसलमानों-मे अंतिम मुसलमानि शासकों की कट्टर नीति ने पार्थक्य की एक तीव्र रेखा खींच दी थी। किन्तु मुगल-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद जो विपत्ति और असंतोष का समय आया उसमें हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाई ज़रूर कुछ कम हुई। इस कार्य में रीतिकाल के संत कवियों बुल्ला साहब, चरनदास, गरीबदास, सहजोबाई, पलटूदास की वाणियो ने भी काफी सहायता की। इन कवियों का प्रभाव सामान्य जनता पर विशेष पड़ा, इसी कारण हिन्दू-मुसलमानो के भेद की रेखा गाँवों में बिल्कुल धुँधली

पड़ गई थी। आचार-विचार और रीति-नीति का भी बहुत हद तक मिश्रण हो गया था। लेकिन राजनैतिक उलट-पुलट के इस युग में जनता की दशा अच्छी नहीं थी। मराठों के उत्पात और अंग्रेजों की व्यापारिक नीति से देश की दुरावस्था बढ़ी। अंग्रेज़ों ने ज़मीदारी की प्रथा चलाकर किसानो के शोषण का स्थायी बन्दोबस्त कर दिया। व्यापार और कृषि की दशा गिरी, फलतः आर्थिक संकट का भयंकर युग आया। धन की कमी और बेकारी ने ठगी और चोरी को प्रश्रय दिया। गाँवों का पंचायतों वाला पुराना संगठन शिथिल पड़ गया और अंग्रेजों की नई न्याय-प्रणाली के कारण वकीलों का एक नया वर्ग उठ खड़ा हुआ। आशय यह है कि देश की दुर्दशा बढ़ती ही गई। ज्ञान का प्रसार अवरुद्ध हो जाने के कारण अंध-विश्वासों की वृद्धि होने लगी। अपढ़ तो क्या संस्कृतज्ञ उच्च वर्ग के लोग भी रूढ़ि और भ्रांति के भयकर शिकार हुए। इस प्रकार सारा देश नैतिक, आर्थिक और बौद्धिक पतन के ऐसे अंध-गर्त मे गिरा कि उसे फिर कई सौ वर्षों तक उठने का भी होश न रहा।

धार्मिक भक्ति—भाषा काव्य-रचना के प्रदेश में वैष्णव धर्म का खासा प्रचार था। वैष्णव धर्म में भी कृष्ण-सम्प्रदाय ही विशेष प्रचलित था क्योंकि जनता को आकर्षित करने के लिए इसमें बहुत कुछ था। कृष्ण-भक्ति के भी अनेक संप्रदाय हो चले थे जिनकी अलग-अलग गद्दियाँ स्थापित हुईं। आचार्य वल्लभ के बाद उनके सात पुत्रों ने अलग-अलग गद्दियाँ स्थापित कीं—गोकुल, कामबन, काँकरौली, श्रीनाथ द्वारा, सूरत, बम्बई, और काशी। किन्तु इन भिन्न-भिन्न गद्दियों के अधिकारियों ने जनता से सबंध स्थापित न कर राजाओं और श्रीमानों से संपर्क स्थापित किया, फलतः ऐश्वर्य की वृद्धि होने लगी और धर्म के तात्त्विक उपदेशों और रहस्यों की ओर ध्यान ही न दिया गया। भगवान् की कितनी ही रीति-प्रणालियों से सेवा की जाने लगी, यह एक अलग ही विषय है। इस प्रकार षोडषोपचार आदि के कारण भक्त लोग ऐश्वर्य और भोग में लिप्त हुए। ठीक ऐसी ही दशा कृष्ण-भक्ति के अन्य संप्रदायों की थी—माध्व, निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभीय। कृष्ण-भक्ति में राधिका को विशेष महत्व दे-देने के कारण शृंगार

अथवा रति भावना को भक्ति और काव्य दोनों के क्षेत्र में यथेष्ट प्रोत्साहन मिला, जिससे धर्म के क्षेत्र में नैतिक पतन और तत्व-ज्ञान की कमी के दर्शन हुए।

दक्षिण के महाराष्ट्र प्रांत में संत तुकाराम और भक्त रामदास की वाणी धार्मिक चेतना का संचार कर रही थी तथा पश्चिम में पंजाब प्रान्त मे सिक्ख धर्म भी जीवन के यथेष्ट लक्षण दिखा रहा था। किन्तु यह धार्मिक जागृति हिन्दी-प्रदेश के बाहर के क्षेत्रों मे थी, फलतः इसका कोई विशेष प्रभाव हिन्दी कवियो पर नहीं पड़ा।

उधर मुसलमानों की कुरान भी सामयिक जीवन के मेल में न बैठता थी किंतु मुसलमान धर्म की लीक पीट रहे थे। रूढ़ि का ऐसा अन्धानुकरण भी अन्यत्र नहीं मिल सकता।

धर्म की यह दशा थी सम्पन्न लोगो के यहाँ, किन्तु जो बहु-संख्यक साधारण जनता थी उसमें तो अंध-विश्वास धर्म का पर्याय हो गया था। जो जितना बड़ा पाखंडी होता वह जनता द्वारा उतना ही बड़ा धर्म का स्तम्भ माना जाता। 'झुण्ड के झुण्ड स्त्री-पुरुष पीरों के तकियों पर अपनी मुरादें लिए पहुँचा करते और ये लोग जो अधिकाँश मे रंगे हुए सियार होते थे, उनको फरजी तावीज़ वगैरह देकर खूब लूटते और भ्रष्ट करते थे। मनुष्य-पूजा भी अपने विकृत रूप में वर्तमान थी। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अपने गुरुओं और पीरों को ईश्वर का दर्जा देने लग गए थे। ········हिन्दुओं का अध-विश्वास यहाँ तक बढ गया था कि वे प्रत्येक विशाल-बाहु व्यक्ति को हनुमान का अवतार मान कर पूजना शुरू कर देते थे।' * लेकिन जनता को राम और कृष्ण मे अखंड विश्वास था। रामलीला और रासलीला समय-समय पर होते रहते थे। 'सूर' और 'मीरा' के पदों का गान होता रहता था। मुसलमान भी कीर्तन की ही भाँति गजलें और कव्वालियाँ गा-गाकर रात बिता देते थे। इस कीर्तनात्मक अथवा गुणस्तवनात्मक भक्ति मे कुछ जीवन था, जन-हृदय को कुछ संतोष और उत्साह प्राप्त होता था।

---

* रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेंद्र

इनके अतिरिक्त संतों और भक्तों का एक वर्ग और भी था जो कबीर, दादू और नानक की ही भाँति धर्म के मूल-भाव को ग्रहण कर जनता के बीच ईश्वर और जीव का रहस्य स्पष्ट करता चल रहा था। ऐसे संतो में जगजीवन, बुल्ला साहब, चरनदास जी, सहजोबाई, दयाबाई भक्त थे। इनमें भी पृथक्-पृथक् पंथ थे जैसे सतनामी, नारायणी, लालदासी आदि। ये भक्ति पंथ सुसंगठित और दृढ थे। गृहस्थ-जीवन के बीच भी कैसे सदाचरण का विधान हो सकता है और ब्रह्म की प्राप्ति की जा सकती है—ये लोग इस बात का उपदेश करते थे। इनकी सरलता मे मिथ्याचार का लेश न था। ऐसे ही मुसलमानों के भी कई सप्रदाय कार्य कर रहे थे जैसे चिश्तिया, निजामिया, कादिरिया आदि। किन्तु इनके स्वर में कबीर और दादू का सा बल न था, फिर भी ये अपने ढंग से जनता के बीच धर्म का प्रचार कर रहे थे।

रीति साहित्य के अवसान काल में ईसाई धर्म का भी कुछ-कुछ प्रचार हो चला क्योंकि इस काल में अंग्रेजों का देश पर काफी प्रभुत्व हो गया था, अनेक देशी भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद निकले किन्तु साहित्य इन सबसे असंपृक्त ही रहा।

साहित्यिक परम्पराएँ—केशवदास जी सजग और सचेष्ट कलाकार थे अतएव उनके लिए तो यह नितान्त स्वाभाविक ही था कि वह संस्कृत की साहित्यिक परम्परा के साथ ही हिन्दी की पूर्ववर्तिनी काव्य-परम्पराओं से भी पूर्णतया परिचित होते। उनका काव्य स्वयं इस बात का सम्यक प्रमाण उपस्थित करता है कि वह हिन्दी की सर्वांगीण समृद्धि से भली-भाँति अभिज्ञ थे तथा काव्य-रचना की समस्त शैलियाँ जिस प्रकार से युगचेता तुलसी में दर्शनीय हैं, उसी प्रकार, अपितु अधिक व्यापकता के साथ वे केशव के काव्य में देखी जा सकती हैं। वीर-गाथाओं की शैली 'रतन बावनी' तथा अन्य चरित-काव्यों में देखी जा सकती है। जहाँ द्वित्त-वर्णों एवं सयुक्ताक्षरों का बाहुल्य भाषा को तथा छप्पयादि छन्द-रचना शैली को तदनुरूपता देते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार तुलसी की सी प्रबन्धपटुता के दर्शन 'वीरसिंह देव चरित्र' एवं 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' में होते हैं जहाँ कथा का प्रवाह अबाध गति से चलता है, 'रामचन्द्रिका' की भाँति खंडित एवं विभक्त

होकर नहीं। संतो की सी उदारता, पवित्रता, दर्शन की ओर प्रवृत्ति तथा वैराग्य एवं जगद्दर्शन के लिए उनकी 'विज्ञान गीता' देखी जा सकती है। रामचन्द्रिका उनकी रामभक्ति के अतिरिक्त रामकाव्य की परम्परा को बढ़ाने की प्रवृत्ति का जीवंत प्रमाण है; इसके अतिरिक्त सूर की मधुर राग-रस वर्षिणी वीणा से उत्पन्न गोपीकृष्ण प्रेमवर्णना से प्रभावित 'रसिकप्रिया' काव्य रसिकों का कण्ठहार है ही। काव्य-रीति की शिक्षा एवं अलंकार-निरूपण की उस परम्परा के पोषण में जिस का प्रारम्भ कृपाराम की 'हिततरंगिणी' (सं० १५९८) से होता है, केशव ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कविप्रिया' लिखी। नायिकाभेद एवं रस विवेचन 'रसिकप्रिया' का वर्ण्य रहा। छन्द-शास्त्र पर भी केशव का एक पृथक ग्रंथ कहा जाता है। संक्षेप मे यह कि पूर्ववर्ती काव्य परम्पराओं का समूचा विस्तार केशव के काव्य मे किसी-न किसी रूप मे अन्तर्निहित है। सभी प्रकार के भाव, विविध रस, छंद, अलका-रादि गुणो से युक्त उनका काव्य इस बात का अक्षय प्रमाण है कि वह किस प्रकार हिन्दी की समसामयिक एवं पूर्ववर्तिनी परम्पराओं से एकाकार होकर चले। केशव ने इन परम्पराओ का पोषण और सवर्धन तो किया ही, साथ ही काव्य-रचना की नवीन परम्पराओं को भी जन्म दिया। वह काव्यरीति के आचार्य और काव्य-रचना के कुशल कवि दोनो थे। इन्ही कारणो से वह हिन्दी-साहित्य में अत्यधिक सम्मान और आदर के पात्र हैं।

केशवदास का जीवन-वृत्त

अधिकांश भक्त-कवियों के जीवन-परिचय में जो कठिनाइयाँ हैं, वे सौभाग्य से केशवदास जी के सम्बन्ध में उतनी नहीं हैं। केशव की रचनाओं में ही बहुत सी सामग्री उपलब्ध हो जाती है जिससे हम उनके जीवन के अनेक पक्षों पर निश्चित जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। फिर भी अनेक समस्याएँ अनसुलझी ही रह जाती हैं जिनके लिए बहिर्साक्ष्यों की ओर दौड़ना पड़ता है।

वंशपरंपरा—कविप्रिया के दूसरे प्रभाव में केशवदास जी ने अपना वंश-परिचय इस प्रकार दिया है :—

ब्रह्मा जू के चित्त तें प्रगट भये सनकादि।
उपजे तिनके चित्त ते सब सनौढ़िया आदि ॥१॥
परशुराम भृगु नन्द तब उत्तम विप्र विचारि।
दये बहत्तर ग्राम तिन तिनके पायँ पखारि ॥२॥
जगपावन वैकुंठपति रामचन्द्र यह नाम।
मथुरा मंडल में दये तिन्हैं सात सौ ग्राम ॥३॥
सोम वंश यदुकुल कलस त्रिभुवन पाल नरेश।
फेरि दये कलिकालपुर तेई तिन्हैं सुदेश ॥४॥
कुंभवार उद्देस कुल प्रगटे तिनके वंस।
तिनके देवानंदसुत उपजे कुल अवतंस ॥५॥
तिनके सुत जगदेव जग थापे पृथिवीराज।
तिनके दिनकर सुकुलसुत प्रगटे पंडितराज ॥६॥
दिल्लीपति अल्लाउदीं कीन्हीं कृपा अपार।
तीरथ गया समेत जिन अकर करे बहुवार ॥७॥
गया गदाधर सुत भये तिनके आनँद कंद।
जयानंद तिनके भये विद्यायुत जगचंद ॥८॥

भये त्रिविक्रम मिश्र तब तिनके पंडितराय।
गोपाचलगढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पाय ॥६॥
भावशर्म तिनके भये जिनकै बुद्धि अपार।
भये शिरोमणि मिश्र तब षट दर्शन अवतार ॥१०॥
मानसिंह सों रोषकरि जिन जीती दिसि चारि।
ग्राम बीस तिनको दये राना पावँ पखारि ॥११॥
तिनके पुत्र प्रसिद्ध जगकीन्हे हरि हरिनाथ।
तोमरपति तजि और सों भूलि न ओड़यो हाथ ॥१२॥
पुत्र भये हरिनाथ के कृष्णदत्त शुभ वेश।
सभाशाह संग्राम की जीती गढ़ी अशेष ॥१३॥
तिनको वृत्ति पुराण की दीन्हीं राजा रुद्र।
तिनके काशीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र ॥१४॥
जिनको मधुकर साह नृप बहुत करयो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धि निधान ॥१५॥
बालहि तें मधुसाह नृप जिनपै सुने पुरान।
तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान ॥१६॥

(कविप्रिया : दूसरा प्रभाव)

इस प्रकार अपनी वंश-परपरा का केशव ने सविस्तार उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके पितामह कृष्णदत्त मिश्र थे जो सूर्यवंशियों की गहरवार परंपरा (या शाखा) मे होने वाले महाराज प्रतापरुद्र के आश्रित थे। ये महाराज प्रतापरुद्र रणभूमि मे शंकर के समान तेजस्वी एवं पराक्रमी थे; इनके विषय में केशव लिखते हैं:—

दयादान को कल्पतरु गुननिधि शील समुद्र ॥
नगर ओरछो जिन रचो, जग में जागति कृत्ति।
कृष्णदत्तमिश्रहिं दई जिन पुराण की वृत्ति ॥

(कविप्रिया : पहला प्रभाव)

केशव के पितामह कृष्णदत्त मिश्र महाराज प्रतापरुद्र की बसाई हुई नगरी ओरछा में पुराण वृत्ति पर रहा करते थे। उनके पुत्र काशीनाथ हुए जो अगाध बुद्धिवाले थे तथा जिन का महाराज रुद्रप्रताप के पुत्र महाराज मधुकरशाह बड़ा सम्मान करते थे। काशीनाथ के तीन पुत्र हुए बलभद्र, केशवदास और कल्यान। केशवदास सम्भवतः मझले थे। सम्भवतः केशव के पिता काशीनाथ की मृत्यु शीघ्र हो गई थी, अतः उनके बड़े भाई बलभद्र जी महाराज मधुकरशाह को पुराण सुनाया करते थे।

बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा—केशवदास जी की बाल्यावस्था में ही उनके पिता श्री काशीनाथ चल बसे, जिसके कारण वह वंशपरंपरागत संस्कृत का पाण्डित्य न पासके। उनके अग्रज बलभद्रमिश्र सन्स्कृत के अच्छे ज्ञाता थे और वह महाराज मधुकरशाह को पुराण पढ़ कर सुनाया करते थे। संस्कृत के धुरीण पण्डितों के वंश में जन्म लेकर भी अपने पूर्वजों के अनुरूप संस्कृत का पाण्डित्य न पा सकने के कारण केशव को जो आजीवन अनुताप रहा उसे उन्होंने एकाधिक बार व्यक्त किया है—

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास॥

(कविप्रिया : दूसरा प्रभाव)

एक अन्य स्थल पर वह अपने पूर्वजों की प्रकाण्ड विद्वत्ता का ध्यान करते हुए कहते हैं:—

सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जगसिद्ध शुद्ध सुभाव।
सुकृष्णोदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडित राव॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध॥
उपज्यो तेहि कुल मंदमति, शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, भाषा करी प्रकास॥

इस सम्बन्ध में मैं आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के मत से सहमत हूँ—"केशव का यह विषाद इतना प्रगाढ़ है कि हम इसे इनकी दीनता या विनय के भीतर

नहीं छिपा सकते। यदि केशव सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते तो कोई-न-कोई रचना संस्कृत में अवश्य करते। किन्तु उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। तो फिर सीधे से ऐसा क्यों न मान लिया जाय कि वास्तव में संस्कृत में काव्य रचने की योग्यता उनमें न थी और इसका मूल कारण था बचपन में ही पितृसुख से वंचित होना। यदि उनके पिता श्री काशीनाथ और जीवित रहते तो उनकी शिक्षा और पूर्ण हो जाती और उनके जी का विषाद भी निकल जाता।"

केशवदास और महाराज इन्द्रजीतसिंह—महाराज मधुकरशाह के आठ पुत्र हुए—दूलहराम, होरिलराव, रतनसेन, इन्द्रजीत, शत्रुजीत, वीरसिंहदेव, हरसिंह और रामशाह। महाराज मधुकरशाह के बाद रामशाह ही ओरछा-राज्य के उत्तराधिकारी हुए; वह बड़े गुणी, शूरवीर और धर्मात्मा थे। अकबर की सभा में भी उनका बड़ा सम्मान था। अपने राज्य में भी उन्हे सब लोग हृदय से मानते थे। राजा रामशाह के ११ पुत्र थे, अनेक पौत्र एवं भाई थे, किन्तु फिर भी उन्होंने समस्त राज्यभार अपने अनुज इन्द्रजीतसिंह के सिर डाल रक्खा था:—

सुत सोदर नृप राम के यद्यपि बहु परिवार।
तदपि सबै इन्द्रजीत सिर राज-काज को भार॥

(कविप्रिया: पहला प्रभाव—)

महाराज इन्द्रजीतसिंह कल्पवृक्ष से दानी और सागर से गंभीर थे। वह अत्यन्त पराक्रमी और रणधीर थे, राज्य-संचालन में भी वह असाधारण रूप से कुशल थे। ललित कलाओं से उन्हें विशेष अनुराग था। उनका दरबार संगीत और नृत्य का अखाड़ा था जहाँ परम कुशल राजनर्तकियों के नूपुरों का क्वणन होता रहता था—जिनके नाम थे रामप्रवीण, नवरंगराय, नयनविचित्रा, तानतरंग, रंगराय, रंगमूरति। ऐसे महाराज इन्द्रजीतसिंह की केशवदासजी के प्रति बड़ी कृपा थी, उन्होंने इन्हे २१ गॉव भेंट में दिये। वह इन्हें गुरू के समान मानते थे:—

गुरु करि मान्यौ इन्द्रजीत तन-मन कृपा विचारि।
ग्राम दये इक बीस तब ताके पायँ पखारि।

महाराज इन्द्रजीत द्वारा सम्मानित होने के कारण महाराज रामशाह भी इन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे—

इन्द्रजीत के हेत पुनि राजा राम सुजान ।
मान्यो मंत्री मित्र कै केशवदास प्रमान ।।

(कविप्रिया : दूसरा प्रभाव)

इस प्रकार केशवदास जी इन्द्रजीत के अत्यन्त निकट थे और उनके यहाँ वह गुरुवत् सम्मानित भी थे । इन्द्रजीत के दरबार की छः नर्तकियों में जो सर्वश्रेष्ठ थी, रायप्रवीन, उसे कविकर्म की शिक्षा देने के लिए ही केशव ने कविप्रिया की रचना की । * यद्यपि आनुषंगिक रूप से नव काव्याभ्यासी बालक-बालिकाओं को काव्य-रीति की शिक्षा देना भी उनका अभिप्रेत था । † इसी प्रकार रसिकप्रिया की रचना का उद्देश्य महाराज इन्द्रजीतसिंह की इच्छापूर्ति करना था :—

तिन कवि केशवदास सों कीन्हों धर्म सनेहु ।
सब सुख दै करि यों कह्यौ रसिकप्रिया करि देहु ।।

(रसिकप्रिया : प्रथम प्रकाश)

'सब सुख दै करि' पद ध्यान देने योग्य है । केशवदास जी को महाराज इन्द्रजीत ने धन-धान्य से इतना भर रक्खा था कि वह ऐश्वर्य एवं विभूति से पूर्ण तृप्त थे, किसी सांसारिक सुख का उन्हें अभाव न था—

काशीश कुल कलस, जम्बूदीप दीप केशो—
दास को कलपतरु इन्द्रजीत आये ज ।।
भूतल को इंद्र इंद्रजीत राजै युग-युग,
केशोदास जाके राज राज सो करत है ।।

(कविप्रिया : चौथा प्रभाव)

---

* सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकास ।
ताके काज कविप्रिया, कीन्हीं केशवदास ।। (कविप्रिया : पहला प्रभाव)

† समुझै बाला बालकहु बर्णन पंथ अगाध ।
कविप्रिया केशव करी, छमियो कवि अपराध ।। (कविप्रिया : तीसरा प्रभाव)

इतना सम्मान पाने पर यह स्वाभाविक ही था कि वह महाराज इन्द्रजीतसिंह और उनके कुल की प्रशंसा में कुछ लिखते और उन्होंने ऐसा किया भी है—

कल्पवृक्ष सो दानि दिन सागर सो गंभीर।
केशव सूरो सूर सौं अर्जुन सो रणधीर॥

(कविप्रिया : पहला प्रभाव)

रसिकप्रिया में भी केशव ने उन्हें समस्त धर्मों का आश्रय, सुशासक तथा राज्य की वृद्धि करने वाला कहा है। एक बार केशवदास जी महाराज इन्द्रजीत के साथ तीर्थयात्रा के लिए निकले। उन पर अत्यन्त प्रसन्न हो प्रयागराज में महाराज ने केशव से मनोवाञ्छित याचना करने के लिये कहा, सब प्रकार से परितुष्ट केशवदास जी उनकी कृपा के अतिरिक्त और माँगते भी क्या?

इंद्रजीत तासों कह्यो माँगन मध्य प्रयाग।
माँग्यौ सब दिन एकरस कीजै कृपा सभाग॥

(कविप्रिया : दूसरा प्रभाव)

निवास—केशवदास जी ने अपना निवास बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ओरछा नामक स्थान बतलाया है। ओरछा नगर बेतवा के तट पर बसा हुआ है और तुंगारण्य तीर्थ के समीप है—

नदी बेतवै तीर जहँ, तीरथ तुंगारन्न।
नगर ओड़छो बहु बसै, धरणीतल में धन्न॥
आश्रम चार बसै जहाँ, चार वरण शुभ कर्म।
जप तप विद्या वेदविधि सबै बढ़ै धन धर्म॥
दिनप्रति जहं दूनों लहैं, जहां दया अरु दान।
एक तहाँ केशव सुकवि, जानत सकल जहान॥

(रसिकप्रिया : प्रथम प्रकाश)

अपने वासस्थान ओरछा और उस वेत्रवती, जिसके तीर पर यह नगर स्थित था, का वर्णन केशव ने बड़े प्रेम और उमंग से किया है—

चहूँ भाग बाग वन मानहुँ सघन घन,
सोभा की सी साला, हंस मालासी सरितवर।

ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की कीन्हीं गंगा खेलत तरलतर ॥
आपने सुखनि आगे निंदत नरेंद्र और,
घर घर देखियत देवता से नारिनर ।
केसोदास त्रास जहाँ केवल अदृष्टही को,
वारिए नगर और ओरछा नगर पर ॥

वेतवा का वर्णन देखिए—

ओरछे तीर तरंगिनि वेतवै ताहि तेरे रिपु केसव कोहै ।
अर्जुन बाहु प्रवाह प्रवोधित रेवा-ज्यों-राजन की रज मोहै ॥
ज्योति जगै जमुना सी लगै जग लोचन लालित पाप विपोहै ।
सूर सुता सुभ सगम तुंग तरग तरंगित गंग सी सोहै ॥

अपने जीवन के अंतिम काल में केशवदास जी को संभवतः ओरछा छोड़कर अन्यत्र चला जाना पड़ा था। विज्ञान गीता में इस आशय के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। केशव ने महाराज वीरसिंहदेव से कहा—

वृत्ति दई पुरुखानि की, देउ बालकनि आसु ।
मोहि आपनो जानि कै, गंगा तट देउ वासु ॥

और महाराज ने ऐसा किया भी—

वृत्ति दई, पदवी दई, दूरि करो सब त्रास ।
जाइ करो सकलत्र श्रीगंगातट बस वास ॥

(विज्ञान गीता : २१वाँ प्रभाव)

वृद्धावस्था मे गंगातट वास की यह स्वाभाविक कामना केशवदास जी के मन में थी, किन्तु वह पूर्ण भी हुई या नही इस सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी अभी तक नही हो सकी है। रत्नाकरजी ने अनुमान किया है "कि सोरो घाट को उन्होंने अपने निवास के लिए सोचा था, अतः उसके पथ मे व्रज पडने के कारण वहाँ ठहर गए।" किन्तु अनुमान तो अनुमान ही है।*

---

*नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९८४-पृ० १२८

केशव के सम्बन्धी एवं परिचित—यह पहले ही कहा जा चुका है कि केशव के पितामह कृष्णदत्त मिश्र और पिता काशीनाथ थे। उनके बड़े भाई का नाम वलभद्र और छोटे का कल्यान था। उनकी धर्मपत्नी उनकी जरावस्था तक उनके साथ रहीं। विज्ञान गीता के पूर्वोक्त दोहे से यह बात प्रकट है जिसमें महाराज वीरसिंह ने उन्हें 'सकलत्र गंगातट वास' की आज्ञा दी है। 'देउ बालकनि आसु' से जाहिर है कि केशवदासजी को सन्तान भी थी। इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि केशव को किसी प्रकार का पारिवारिक कष्ट नहीं था। उनके पूर्वज समकालीन ओरछा नरेश के पूर्वजों द्वारा सम्मानित होते आए थे और उनके पुरखों की जो पुराण-वृत्ति थी वह उनके बाद भी यथावत् चलती रही।

केशवदास के अनेक आश्रयदाता कहे गए हैं। संदेह नहीं कि हिन्दी साहित्येतिहास की दीर्घ परम्परा में राजाओं द्वारा सम्मानित कवियों में जो आदर-सत्कार और श्रीसम्पन्नता केशव को सुलभ थी वह बहुतों को न थी। देव और पद्माकर ऐसे कितने ही प्रतिभावान कवि एक राज्य से दूसरे राज्य में भटकते फिरते थे। चंद और भूषण अवश्य इस सम्बन्ध मे भाग्यशाली थे किन्तु गुरु, मंत्री और मित्र बनने का सौभाग्य भूषण को भी प्राप्त न था। डा० हीरालाल दीक्षित ने अपने शोध ग्रंथ 'आचार्य केशवदास' मे कविप्रिया के इस छन्द—

रजै रज केशवदास टूटत अरुणलार,
प्रतिभट अंकन ते अंक पै सरतु है।
सेना सुंदरीन के विलोकि मुख भूषणनि,
किलकि किलकि जाही ताही को घरतु है॥
गाढ़े गढ़ खेल ही खिलौननि ज्यों तोरि डारै,
जग जय यश चारु चंद्र को अरतु है।
चंद्रसेन भुअपाल आँगन विशाल रण,
तेरो करवाल वाललीला सी करतु है॥

के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि केशव के प्रथम आश्रयदाता संभवतः महाराज चन्द्रसेन थे। "यह जोधपुर के राजा मालदेव के पुत्र थे। मालदेव सम्राट अकबर के अधीन थे किन्तु चन्द्रसेन का हृदय राठौरो के स्वाभाविक दर्प

ने पूर्ण था और वह अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए तड़पा करते थे। सं० १६२५ विक्रमी में पिता के मृत्यु के बाद चन्द्रसेन ने मरु देश के बहुत से वीर अधीनस्थ राजाओं को इकट्ठा कर स्वाधीन रहने का पूर्ण निश्चय किया और जोधपुर से भागकर सिवाना के किले को अधिकृत कर वहाँ से आजीवन मुगलों का वीरतापूर्वक सामना किया तथा सत्तरह वर्ष बाद अर्थात् स० १६४२ वि० के लगभग सम्मानपूर्ण मृत्यु प्राप्त की। इस छंद की अंतिम पक्ति मे प्रयुक्त 'तेरो' शब्द से स्पष्ट है कि यह छन्द केशवदास जी ने महाराज चन्द्रसेन के सम्मुख पढ़ा था। दूसरे, इस छन्द में महाराज चन्द्रसेन के वीरता प्रदर्शन और यशोपार्जन का अवसर मालदेव की मृत्यु के पश्चात् उनके सिवाना के किले का अधिकार प्राप्त कर लेने पर ही हो सकता है। अतएव केशवदास स० १६२५ वि० और स० १६४२ वि० के बीच किसी समय सिवाना गए होंगे जहाँ महाराज चन्द्रसेन से वह सम्मानित हुए।" इसी प्रकार से कविप्रिया में आए हुए एक अन्य नामधारी व्यक्ति अमरसिंह 'रान' के आश्रय में भी केशव का पहुँचना डा० हीरालालजी ने अनुमानित किया है। ये "अमरसिंह मेवाड़ (उदयपुर) के प्रसिद्ध महाराणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र थे जो अपने पिता की मृत्यु के बाद सन् १५६७ (लगभग सं० १६५४ वि०) में मेवाड की गद्दी पर बैठे।......यह अपने वश और महाराणा प्रताप के योग्य उत्तराधिकारी थे।...यह अपनी दानशीलता और वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। यह वीर तो इतने थे कि सम्राट जहाँगीर ने कई बार इनके विरुद्ध सेनाएँ भेजीं किन्तु प्रत्येक बार उसे नीचा देखना पड़ा। दुर्भाग्यवश अन्तिम युद्ध में (सन् १६१३ ई०) जब राना के सम्मुख भागने या बन्दी बनने के अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा तो इन्हें सम्राट की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी, यद्यपि अपनी विवशता के लिए इनका हृदय सदैव मसोसता रहा और अत में राज्यभार अपने पुत्र को सौंप कर यह चित्तौड छोड़कर नौचौकी चले गए, जहाँ से आजीवन वापस न आए"।* केशव ने कविप्रिया मे अमरसिंह की प्रशंसा में लिखा है—

*टाड का राजस्थान, प्रथम भाग, पृ० सं० ४७७।

परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब,
दानिन के दानि कवि केशव प्रमान है।
अधिक अनंत आप, सोहत अनंत संग,
अशरण शरण, निरक्षक निधान है।।
हुतभुक हितमति, श्रीपति बसत हिय,
भावत है गंगा जल, जग को निदान है।
केशोराम की सौं कहै केशोदास देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है।।

"छन्द की अन्तिम पंक्ति मे प्रयुक्त 'कहै' और 'देखि देखि' शब्दो से स्पष्ट है कि यह छन्द राना अमरसिंह के सम्मुख पढ़ा गया था।......अनुमान होता है कि सिवाना से लौटते समय केशवदास मेवाड़ में रुक गये होंगे। 'रसिकप्रिया' नामक ग्रंथ मे केशवदास ने अपने सम्बन्ध में 'जानत सकल जहान' लिखा है। इस कथन से भी उपर्युक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इन शब्दों से ज्ञात होता है कि कवि के रूप में केशवदास की ख्याति 'रसिकप्रिया' के रचनाकाल सं० १६४८ वि० के पूर्व ही दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इसके दो ही उपाय थे। या तो कवि की रचनायें दूर-दूर तक पहुँचती या स्वयं केशव; किन्तु रसिकप्रिया कवि का प्रथम ग्रंथ है, अतएव कवि का स्वय दूर-दूर तक जाना मानना अधिक बुद्धि-संगत है।"* सच तो यह है कि काव्यान्तर्गत आए हुए कतिपय समकालीन वीरों अथवा नरेशों के वर्णनो के आधार पर ही यह निष्कर्ष निकाल लेना कि अमुक-अमुक नरेशों के यहाँ केशव आश्रय पा चुके थे, बहुत समीचीन नही कहा जा सकता। हम इसे शीघ्रता में प्राप्त किए गए निष्कर्ष से अधिक कुछ नहीं कह सकते। अन्तर्साक्ष्य के आधार पर तो यह निर्णय इस प्रकार का है, डा० दीक्षित ने ऐसे कोई बहिर्साक्ष्य भी प्रस्तुत नहीं किये हैं, जिनके आधार पर उनके निर्णय मान्य हो सके। वास्तव में यह उनका अनुमान ही है, इस संभाव्य तथ्य की ओर अनुसंधित्सुओं का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय उन्हें अवश्य है। ऐसा भी संभव है

* आचार्य केशवदास—डा० हीरालाल दीक्षित—पृ० ५३

कि अपने समकालीन मुगलों से लोहा लेने वाले महाराज चन्द्रसेन एवं राणा-अमरसिंह सरीखे वीरों की गुणावलियां एवं कीर्ति से अभिभूत हो उन्होंने इनकी प्रशंसा मे कतिपय स्फुट छन्द लिख दिये हों। ऐसा बराबर होता आया है, कविजन अपने जीवन काल के महापुरुषों का अपने काव्यों मे बराबर उल्लेख करते पाए गए हैं। फिर जिसके यहाँ कवि सम्मानित होता है, उससे उऋण होने के लिए भी कुछ तो करता ही है। केशव ने उक्त राजाओं के यहाँ यदि आश्रय प्राप्त किया होता तो उनके लिए या तो कोई रचना प्रस्तुत की होती या कम-से-कम इस बात का कि हमे अमुक नरेश के यहाँ सम्मान प्राप्त हुआ स्पष्ट उल्लेख किये बिना न रहते। इस प्रकार से किन्हीं किन्हीं वीरों की प्रशस्तियाँ तो केशव की रचनाओं से और भी ढूंढ़ी जा सकती है। वह वीरसिंह चरित्र में लिखते हैं—

एक राजा मानसिंह कछवाहौ केसौदास,
जिहि वर वारिधि के उदर विदारे हैं ।

किन्तु ये सभी तो उनके आश्रयदाता नहीं कहे जा सकते।

केशव के जीवन का सबसे बडा और महत्वपूर्ण भाग वह था जो महाराज इन्द्रजीतसिंह के आश्रय मे व्यतीत हुआ। महाराज इन्द्रजीतसिंह और केशव के सम्बन्ध में पहले ही कहा जा चुका है। इन्द्रजीतसिंह के अनन्तर महाराज वीरसिंह-देव ने भी केशव का यथेष्ट सम्मान किया। "आरंभ में यह केवल बडौन की जागीर के अधिकारी थे, किन्तु सम्राट अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर के सिंहासनासीन होने पर उसने इन्हें मधुकरशाह का पूरा राज्य दे दिया। जहाँगीर के यह विशेष कृपाभाजन थे, क्योंकि सम्राट अकबर के विरुद्ध विद्रोह करने पर इन्होंने जहाँगीर का साथ दिया था। वीरसिंहदेव बडे ही न्यायप्रिय, विद्वान, उदार और वीर थे। इन्होंने सम्राट अकबर के समय में मुगलो के बहुत से किले छीन लिए और कई बार मुगल सेना को परास्त किया था। सम्राट अकबर इन्हें आधीन करने का आजीवन स्वप्न ही देखता रहा।"* केशव ने महाराज वीरसिंहदेव का पूरा चरित्र ही काव्यबद्ध किया है। 'वीरसिंहदेवचरित' इतिहास एवं प्रबन्ध-रचना की दृष्टि से

*आचार्य केशवदास—डा० हीरालाल दीक्षित—पृ० ५२।

महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ कृति है। विज्ञान गीता की रचना केशव ने इन्हीं वीरसिंह की प्रेरणा से की, जिस प्रकार महाराज इन्द्रजीतसिंह की प्रेरणा से रसिकप्रिया की रचना की थी। "विज्ञान गीता' में भी वीरसिंहदेव की प्रशस्ति गाई गई है—

दानिन में बलि से विराजमान जिनि पॉहि,
मॉगिबे को है गतित विक्रम तनक से।
सेवत जगत प्रमुदितनि की मंडली में,
देखियत केशोदास सौनक सनक से॥
जोधनि में भरत भगीरथ सुरथ पृथु,
विक्रम में विक्रम नरेश के बनक से।
राजा मधुकरशाह सुत राजा वीरसिंह,
देव राजनि की मंडली में राजत जनक से॥

तथा

केशोराइ राजा वीरसिंह ही के नामहि ते,
अरि गजराजनि के मद मरुभात है।

(विज्ञान गीता)

'चरित' में तो बहुत कुछ कहा गया है—

बीरसिंह नृपसिंह मही महँ महाराज मनि।
गहिरवार कुल कलस ईस अंसावतार गनि॥

(वीरसिंह चरित)

इन्हीं महाराज वीरसिंह के आश्रय में केशवदासजी अन्त तक रहे, जब गंगा-तट वास की प्रबल इच्छा हुई तो इन्हीं के आदेश से ओरछा छोड़कर गए।

अनेक आधारों पर केशव और बीरबल का मैत्री सम्बन्ध सिद्ध होता है। ऐसी किंवदन्ती है कि महाराज इन्द्रजीतसिंह की प्रेयसी और राजदरबार की सुप्रसिद्ध नर्तकी प्रवीणराय के रूप-यश से प्रभावित हो अकबर ने उसे अपने दरबार में बुला भेजा। प्रवीणराय नर्तकी थी तो क्या, महाराज इन्द्रजीत द्वारा धन, प्रतिष्ठा और सबसे बड़ी चीज प्रेम प्राप्त कर लेने पर किसी और के पास जाना उसे इष्ट

न था। वह केशव की शिष्या एवं काव्याभ्यासिनी, तो थी ही। उसने यह छन्द महाराज इन्द्रजीत को पढ़कर सुनाया—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं निज श्वासन सों, सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुलकानि हिए न लजौं लजि हैं सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

महाराज इन्द्रजीतसिंह ने प्रवीणराय की स्वामिभक्ति से प्रसन्न हो प्रवीणराय को अकबर के समीप न भेजने का ही निश्चय किया। परिणामतः अकबर ने अप्रसन्न हो उन पर एक करोड़ का जुर्माना कर दिया। इस जुर्माने को माफ कराने के उद्देश्य से ही महाकवि केशवदास अकबर के यहाँ भेजे गए थे। केशव ने वीरबल से काव्यपारखी को ही उक्त कार्य में मध्यस्थ बनाना ठीक समझा। अतः उनके पास जाकर उन्होंने उनकी प्रशंसा में यह छन्द पढ़ा—

पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दसचारी।
केशव देव, अदेव रचे, नरदेव रचे रचना न निवारी॥
कै वरवीर वली वलवीर भयो कृतकृत्य महाव्रत धारी।
दै करतापन आपन ताहि, दई करतार दुवौ करतारी॥

वीरबल इस छन्द को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने महाराज इन्द्रजीत पर जो जुर्माना हुआ था उसे अकबर से कह कर माफ करा दिया था। इसके अतिरिक्त प्रसन्न होकर उन्होंने केशवदासजी को ६ लाख रुपये की हुंडियाँ पुरस्कारस्वरूप दीं। तब केशव ने दूसरा छन्द उनकी प्रशंसा में पढ़ा—

केशवदास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक बनाय सँवारयो।
धोये धुवै नहिं छूटो छुटै बहु तीरथ के जल जाय पखारयो॥
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं, जब वीरबली बरवीर निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यौ मुख चारयो॥

जब वीरबल ने फिर प्रसन्न हो और कुछ मागने को कहा तब केशव ने केवल उनकी कृपा की ही याचना की—

योंही कही जु बीरवर, माँगि जु मन में होय।
*माँग्यो तव दरबार में, मोहि न रोके कोय ॥**

एक दन्तकथा यह भी प्रचलित है कि बीरबल की मृत्यु का समाचार केशव ने ही अकबर तक पहुँचाया था। बीरबल पश्चिमोत्तर प्रान्त में लड़ाई पर गए हुए थे। अकबर की घोषणा थी कि कोई भी व्यक्ति बीरबल के अनिष्ट की बात-जुबान पर भी न लाए। जब बीरबल की मृत्यु का समाचार राजधानी में पहुँचा तो किसी को यह साहस न हुआ कि यह समाचार अकबर तक पहुँचा दे। तब केशव को यह दुष्कर कार्य करना पड़ा। उन्होंने अकबर को यह दोहा पढ़कर सुनाया था—

याचक सब भूपति भए, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबर देन ॥ †

किंवदन्तियाँ तो किंवदन्तियाँ ही ठहरीं; मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि उनमें सत्य का लेश भी नहीं होता, किन्तु उन्हें सर्वथा प्रामाणिक भी नहीं माना जा सकता। जो हो, इतना निश्चित था कि बीरबल और केशव एक दूसरे से भली भाँति परिचित थे तथा एक दूसरे का सम्मान करते थे। केशव का राज्यकार्यवश अकबर के दरबार में जाना तथा बीरबल अथवा अन्य दरबारियों से मिलना कोई असंभव बात नहीं; कविप्रिया में बीरबल की प्रशंसा के छन्द मिलते हैं, अंतर्साक्ष्य से यह बात सिद्ध है। केशव का स्नेह और मैत्री-भाव अकबरी दरबार के दूसरे प्रसिद्ध रत्न टोडरमल से भी होना सम्भव है। वीरसिंहदेव में ये पंक्तियाँ प्रमाणस्वरूप मिलती हैं—

टोडरमल तुव मित्त मरे सब ही सुख सोयो।
मोरे हित बरबीर मरे दुख दीननि रोयो ॥

संभव है, अकबर की सभा के अन्य रत्नों ‡ से भी केशव की जान-पहचान रही हो।

---

*कविप्रिया—दूसरा प्रभाव।

†बुन्देल वैभव (प्रथम भाग)—पं० गौरीशंकर द्विवेदी-पृ० १६१।

‡अब्दुर्रहीम खानखाना, अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी, मानसिंह आदि।

कतिपय किवदन्तियों के आधार पर केशव और गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध भी स्थापित किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि एक बार महाराज इन्द्रजीतसिंह के मन में यह इच्छा हुई कि उनकी राजसभा कभी समाप्त ही न हो। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रेतयज्ञ करने का निश्चय हुआ। यज्ञ हुआ जिसमें महाराज इन्द्रजीतसिंह के सभी मित्र और सभासदों ने आत्माहुति दी। केशव का हृदय प्रेतयोनि से उचटने लगा। ये एक कुएँ में पडे हुए थे। संयोग से गोस्वामी तुलसीदास ने जल खींचने के लिए कुएँ में रस्सी डाली तो इन्होंने उनकी रस्सी ही पकड़ ली। गोस्वामीजी ने कहा रस्सी छोड दो किन्तु ये माने ही नहीं। बहुत कुछ कहने-सुनने पर इन्होंने गोस्वामीजी से कहा कि प्रेतयोनि से हमारा किसी प्रकार उद्धार करो तभी हम रस्सी छोड़ेंगे। गोस्वामीजी ने उपाय बताया कि अपनी 'रामचन्द्रिका' का इक्कीस बार पारायण करो। केशव को अपनी रचना का प्रथम छन्द ही विस्मृत हो गया था। गोस्वामी जी द्वारा स्मरण कराने पर केशव ने रामचन्द्रिका के २१ पाठ किये, तब प्रेतयोनि से मुक्ति मिली। इसी प्रकार से बाबा वेणीमाधवदास के 'मूल गुसाईं चरित' में केशव और तुलसी के मिलन की चर्चा इस प्रकार आई है—

कवि केशवदास बड़े रसिया। घनस्याम सुकुल नभ के बसिया॥
कवि जानि के दरसन हेतु गए। रहि बाहिर सूचन भेज दिये॥
सुनि कै जु गोसाईं कहै इनको। कवि प्राकृत केसव आवन दो॥
फिरिगे भट केशव सो सुनि कै। निज तुच्छता आपुइ ते गुनि कै॥
जब सेवक टेरेउगे कहि कै। हौं भेटिहौं काल्हि विनय गहि कै॥
रचि राम सुचन्द्रिका रातिहि मैं। जुरे केशव जू असि घाटहि मै॥
सत संग जमी रस रंग मची। दोउ प्राकृत दिव्य विभूति खची॥
मिटि केसव को संकोच गयो। उर भीतर प्रीति की रीति रयो॥

किन्तु यह ग्रंथ अप्रामाणिक माना गया है, अतएव उक्त आधारों पर इतना निष्कर्ष निकाल लेना असगत न होगा कि केशव और तुलसी का मिलन हुआ था, दोनों एक दूसरे के व्यक्तित्व और कृतित्व से अवगत थे। दोनों कवि समसामयिक थे, ऐसी दशा में ऐसा निर्णय अमान्य न होना चाहिए।

तथा लालचंद्रिका आदि टीकाओं में 'केशवराइ'-को एक स्वर से बिहारी का पिता कहा गया है।

(२) विहारी के अनेक दोहों मे केशव की रचनाओं का स्पष्ट प्रभाव है, भाव ही नहीं अनेक स्थलों पर तो शब्द तक ज्यों के त्यों आ गए हैं जिससे इतना तो निश्चित ही हो जाता है कि बिहारी ने केशव की कृतियो का अच्छा अनुशीलन किया था। 'रत्नाक्र' जी का अनुमान है कि केशव की कृतियों का अध्ययन बिहारी ने बुन्देलखंड में ही किया होगा, क्योंकि उनकी बाल्यावस्था उन्हीं के कथनानुसार बुन्देलभूमि में व्यतीत हुई—

जनमु ग्वालियर जानियै, खंड बुंदेलै बालु।
तरुनाई आई सुघर, बसि मथुरा ससुरालु॥

(३) विहारी ने अपने एक दोहे में 'पातुरराइ' का वर्णन किया है। जो सभवतः अन्य कोई न होकर महाराज इन्द्रजीतसिंह के दरबार की प्रसिद्ध वेश्या प्रवीण राय ही थी—

सब अँगकरि राखी सुघर नाइक नेह सिखाइ।
रसजुत लेत अनन्त गति पुतरी पातुरराइ॥

इससे भी केशव और बिहारी के पिता-पुत्र सम्बन्ध की पुष्टि में सहायता मिलती है। (४) 'रत्नाकर' जी ने एक सूत्र मे बँधे हुए ऐसे अनेक दोहे भी उद्धृत किये हैं जिनमें विहारी का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है तथा जिसके पढ़ने से प्रतीत होता है जैसे विहारी ने स्वतः आत्मवृत्त प्रस्तुत किया हो किन्तु उसकी शैली से यह प्रतीत होता है कि ये दोहे बिहारी कृत नहीं हैं। इन दोहों में बतलाया गया है कि पितामह का नाम वसुदेव और पिता का केशवदेव। अपने पुत्र का नाम कृष्ण बतलाया है। जन्म सं० १६५२। विहारी के पिता हरिदासी सम्प्रदाय में आस्था रखते थे इसलिए विहारी को हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होना पडा आदि। किन्तु जब तक ये दोहे प्रामाणिक न सिद्ध हो तब तक इनमें आई हुई बातों का भरोसा ही क्या? (५) सं० १६६७ में केशव ने अपनी 'विज्ञान गीता' समाप्त की और उसे वीरसिंहदेव को समर्पित किया। 'विज्ञान गीता' के अन्त में जो दोहे आए हैं वे इस प्रकार हैं—

वृत्ति दई पुरुखानि की, देउ बालकनि आसु।
मोहि आपनो जानि कै गंगातट देउ वासु॥
वृत्ति दई, पदवी दई, दूरि करो सब त्रास।
जाइ करो सकलत्र श्री गंगातट बस वास॥

"इन दोहों से विदित होता है कि केशवदासजी को जो गाँव इत्यादि मिले थे, वे छिन गए थे और उनकी प्रार्थना पर फिर उनकी सन्तान को पूर्व पदवी सहित दिए गए। यह भी निश्चित होता है कि उनके एक से अधिक संतान थी, क्योंकि दूसरे दोहे में बालकनि पद बहुवचन है। अतः बिहारी के जो एक भाई और एक बहिन बताए जाते हैं, यह बात भी केशवदास के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है।"

'रत्नाकर' जी द्वारा दिये गये पहले तीन तर्कों के आधार पर यह तो निश्चित सा हो जाता है कि काव्य-रचना का जहाँ तक प्रश्न है बिहारी केशव से प्रभावित थे, संभव है बुन्देलखण्ड में बिहारी को केशव का सम्पर्क लाभ हुआ हो और संभव है प्रवीणराय पातुर की कला का आस्वादन करने का सुयोग भी बिहारी को प्राप्त हुआ हो तथा केशवदास के काव्य-रचना-चातुर्य एवं उसके लिए जैसा अनुकूल वातावरण अपेक्षित है, उस सब को देखते हुए बिहारी के मन में भाषा काव्य के अद्वितीय कलाकार के प्रति अगाध श्रद्धा जगी हो; जैसा कि 'मेरो हरो कलेस सब केसव केसवराय' से विदित है। किन्तु केशव का बिहारी का पिता होना किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं होता। चौथे तर्क में जिस दोहा बद्ध निबन्ध की चर्चा है उसमें केशव के पिता का नाम वसुदेव दिया है जबकि केशव ने स्वतः अपने पिता का नाम काशीनाथ लिखा है। ऐसे प्रमाण केवल हमें भ्रम की ओर ही ले जायेंगे। दूसरी बात यह है कि बिहारी चौबे थे और केशवदास मिश्र-आस्पद सनाढ्य ब्राह्मण थे। पिता-पुत्र का भिन्न आस्पद नहीं हो सकता। यह बात परम्परा से भी प्रसिद्ध नहीं है कि बिहारी केशव के पुत्र थे और दोनों में किसी ने भी इस बात का कहीं उल्लेख नहीं किया। केशव के वंशज हरिसेवकजी का पता चला है, जिन्होंने 'कामरूप की कथा' लिखी है; इस 'कथा' में भी केशव का

उल्लेख तो है किन्तु बिहारी का नहीं। ऐसी दशा में जब तक पर्याप्त प्रमाणों का अभाव है बिहारी केशव के पुत्र नहीं ठहराए जा सकते।

केशव का समय (सं० १६१८-सं० १६७४)—केशवदासजी का जन्म सं० जानने के लिए हमारे पास कोई निश्चित आधार नहीं। विद्वानों ने भी केशव का जन्म सं० संभवतः अनुमान के सहारे ही निर्धारित किया है। उनकी निधन तिथि के विषय में भी यही बात है।

सर्वप्रथम केशव ने महाराज इन्द्रजीतसिंह की प्रेरणा से 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसका रचना काल उन्होंने स्वतः दे दिया है स० १६४८। यह एक तिथि है जिसका हमें निश्चित ज्ञान है। सभवतः इसी को आधार मान कर पं० रामचन्द्र शुक्ल एव मिश्रबन्धुओं ने केशव का जन्म सं० १६१२ निर्धारित किया है; इसके पीछे यह विचार रहा होगा कि रसिकप्रिया का रचयिता कम-से-कम ३५-३६ वर्ष का रहा होगा जब उसने यह प्रथम ग्रन्थ लिखा होगा। लाला भगवान-दीन ने केशव का जन्म स० १६१८ माना है। ऐसी दशा में 'रसिकप्रिया' की रसीली रचना करते समय केशव की आयु ३० वर्ष रही होगी, जब उनका तारुण्य अपनी चरम अवस्था मे रहा होगा। ३० वर्ष की आयु कुशाग्र बुद्धि वाले तथा प्रकाड विद्वानों की परंपरा मे जन्म लेने वाले व्यक्ति के लिए काव्य एवं शास्त्र का यथेष्ट अनुशीलन करने के लिए पर्याप्त है। राज्याश्रय उनके पूर्वजों को भी प्राप्त था सो ज्योंही केशव ने वय प्राप्त किया वे भी महाराज इन्द्रजीत के दरबार में मत्री, मित्र, पार्षद और गुरु का आसन पा गए। महाराज इन्द्रजीत का जन्म स० १६२० माना गया है, इसके अनुसार भी केशव की जन्म-तिथि सं० १६१८ के आस-पास होना ठीक ही है क्योंकि रस में सराबोर करने वाली रचना अपने मित्र एव भक्त महाराज इन्द्रजीत को सुनाने वाले केशव की आयु दो एक वर्ष ही अधिक रही होगी। इस प्रकार सं० १६१८ मे केशव का जन्म मानना उचित होगा।

केशव की मृत्यु पं० रामचन्द्र शुक्ल एवं मिश्रबन्धुओं ने सं० १६७४ निर्धा-रित किया है जो ठीक ही है। यह किंवदन्ती है कि तुलसीदास ने केशव का प्रेत-योनि से उद्धार किया था' परम्परा से प्रसिद्ध है कि तुलसीदासजी का प्राणान्त

सं० १६८० में हुआ, ऐसी दशा में उनकी मृत्यु के ५-६ वर्ष पूर्व केशवदासजी का देहावसान मानना सर्वथा उपयुक्त है। एक दूसरी दृष्टि से भी विचार करते हुए केशव पर महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य प्रस्तुत करने वाले डा० हीरालाल दीक्षित ने भी केशव की निधन तिथि सं० १६७४ ठहराया है—"केशव के जीवन से संबंध रखने वाली अन्तिम निश्चित तिथि सं० १६६६ वि० है जब केशव ने सम्राट् जहाँगीर के यशगान के लिए 'जहाँगीर जस चन्द्रिका'* लिखी। यदि केशव की मृत्यु स० १६७० वि० मे हुई होती जैसा प० अम्बिकादत्त व्यास ने माना है, तो सं० १६६६ वि० में इनका स्वास्थ्य साधारणतः इस योग्य न होना चाहिए कि वह किसी ग्रंथ की, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो, रचना करते । फिर मृत्यु की ओर अग्रसर होते हुए किसी वृद्ध के लिए भारत सम्राट् के यशगान द्वारा उसका कृपा-भाजन बनने का प्रयास भी उचित नहीं प्रतीत होता। अतएव सं० १६६६ वि० में केशव का स्वास्थ्य ऐसा अवश्य रहा होगा, जिसको देखते हुए कम से कम उन्हें अपनी मृत्यु की कोई सम्भावना न रही होगी। सम्भवतः केशवदास जी सं० १६६६ वि० के बाद भी कुछ वर्ष अवश्य जीवित रहे। इस प्रकार केशव की मृत्यु सं० १६७४ वि० में मानना ही अधिक उपयुक्त है।"†

ग्रंथरचना—खोज रिपोर्टों के अनुसार तो केशव के नाम से जो ग्रंथ मिलते हैं उनकी संख्या एक दर्जन से ऊपर है किन्तु केशव के ८ ग्रंथ ही प्रामाणिक ठहराए गए हैं, जो रचनाकाल-क्रम से इस प्रकार हैं :—

(१) रसिकप्रिया	स० १६४८
(२) रामचन्द्रिका	स० १६५८
(३) नखशिख	सं० १६५८
(४) कविप्रिया	सं० १६५८
(५) रतन बावनी (लगभग)	सं० १६६०

*सोरह सै उनहत्तरा माहा मास विचारु।
जहाँगीर सक साहि की करी चंद्रिका चारु ॥

†महाकवि केशवदास पृ० ३२-३३—(जहाँगीर जस चंद्रिका)

(६) वीरसिंहदेव चरित सं० १६६४
(७) विज्ञानगीता स० १६६७
(८) जहाँगीर जस चन्द्रिका सं० १६६६

इनमें से रसिकप्रिया, नखशिख और कविप्रिया तो काव्याभ्यासियों के लिए काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ हैं तथा रामचन्द्रिका जहाँ एक ओर कवि की रचना चातुरी का उत्कृष्टतम निदर्शन है वहीं पर दूसरी ओर पांडित्याभिमानियों के पाडित्य परखने की वस्तु भी। कृति की क्लिष्टता को लक्ष्यकर केशव को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा गया है और इसी के सम्बन्ध मे यह उक्ति भी लोक प्रचलित है—

कवि को चहैं न देन बिदाई
बूझै केशव की कविताई।

वीरसिहदेव चरित, रतनबावनी और जहाँगीर जस चन्द्रिका मे नरचरित्रों का आख्यान वर्णित है तथा प्रबन्ध रचना कौशल की दृष्टि से इन कृतियों का महत्व अत्यधिक है। विज्ञान गीता दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन से सम्बन्ध रखती है।

व्यक्तित्व—हिन्दी साहित्य जगत में महाकवि केशवदास का व्यक्तित्व असाधारण है। जीवन और जगत के प्रति उनकी दृष्टि सजग थी और उनका दृष्टिकोण स्वस्थ। उनका सम्बन्ध राजदरबारों से था, इसीलिए उनमें यथेष्ट चातुर्य एवं व्यवहारकुशलता के दर्शन मिलते हैं। महाराज बीरबल से मिलकर अकबर द्वारा महाराज इन्द्रजीतसिंह पर किये गए जुरमाने को माफ करा देना केशव ऐसे व्यावहारिक व्यक्ति के ही वश की बात थी। अकबरी दरबार के नवरत्नों में से अनेक-टोडरमल, बीरबल, खानखाना आदि उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे और उनकी योग्यता के कायल थे। केशव की काव्य रचना कुशलता पर तो बीरबल लट्टू थे। 'दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुइ करतारी' वाले सवैये पर रीझकर उन्होंने केशवदास को ६ लाख रुपये की हुंडी पुरस्कार स्वरूप दी। केशव पर्याप्त रूपेण श्रीसम्पन्न थे, उनमें लोभ का लेश भी न था; अनेक बार प्रसन्न होकर राजाओं ने केशव को पुरस्कृत करना चाहा, किन्तु उन्होंने हर बार उनसे (महाराज इन्द्रजीतसिंह और राजा बीरबल से) यही याचना की कि

आपकी मेरे ऊपर कृपा बनी रहे. इतना ही मेरे लिए पर्याप्त है। केशव आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा से धन को अधिक महत्व देने वाले व्यक्ति न थे; सच तो यह है कि प्रतिष्ठा का महत्व उनके लिए प्राणों से भी अधिक था। 'रतन बावनी' में उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि प्राण चले जाने पर तो फिर मिल सकता है किन्तु यदि प्रतिष्ठा चली गई तो फिर नहीं प्राप्त हो सकती—

'प्राण गए फिर फिर मिलहीं, पति न, गए पति पाइये।'

यदि किसी की प्रतिष्ठा या मर्यादा चली जाती है तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और आत्मसम्मान की भावना का विलोप हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य गुणहीन और निर्लज्ज हो जाता है। निर्लज्ज व्यक्ति धर्मच्युत होता है, कर्महीन हो जाता है और उसके मन में पाप निवसित होने लगता है। इस प्रकार उनके लिए आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा का असाधारण महत्व था। राजनीतिज्ञ के लिए अपेक्षित चतुरता भी उनमें खूब थी जिसके दर्शन अनेक स्थलों पर हमें रामचन्द्रिका में मिलते हैं और जिसका एक उदाहरण रावण द्वारा अंगद को फोड़ने का प्रयत्न है। केशव के व्यक्तित्व में राजसिक गुणों की प्रधानता है, इसी से ऐश्वर्य और विभव आदि के वर्णन में उनका मन बहुत रमा है। शृंगार रस में उन्होंने जो सीमातिक्रमण कतिपय स्थलों पर किया है वह भी इसी राजसिक मनोवृत्ति के ही कारण। उनका हृदय सदा सरस था, इस का स्रोत वार्धक्य में भी शुष्क नहीं पड़ा यह उनके इस प्रसिद्ध दोहे से स्पष्ट है—

केशव केशनि अस करि जस अरि हूँ न कराहिं।
चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥

यह तो किसी भी कवि के सुसवेद्य हृदय की अचूक पहचान है। किन्तु केवल शृंगार में ही उन्हें डूबा हुआ कहना अन्याय का समर्थन होगा। जीवन और जगत की असारता के प्रति उनकी दृष्टि न गई हो ऐसी बात नहीं। संसार की क्षणभंगुरता का भी उन्हें पूर्ण ध्यान था, अनेकानेक स्वच्छन्द छंदों में तथा प्रबन्ध काव्यों में इस सम्बन्ध में उन्होंने बहुत कुछ कहा है—

पेट चढ्यो पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यो, चित्र सारि चढ्यो गज बाजि चढ्यो गढ़ गर्व चढ्यो रे॥
व्योम विमान चढ्योई कहि रह्यो केशव सो कबहूँ न पढ्यो रे।
चेतन नाहिं रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहूँ चढ्यो रे॥
हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ संग रै है॥
केशव काम के राम बिसारत और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतक लोक अकेलोइ जै हैं॥

केशवदासजी को वाणी का वरदान प्राप्त था इसी कारण वाक् संयम और वागकौशल का जैसा सुन्दर समावेश उनकी 'रामचन्द्रिका' के संवादो मे देखने को मिलता है वैसा मध्यकालीन साहित्य में अन्यत्र कम है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात जो केशव की है वह है उनका पाण्डित्य। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों के वंशज होने के नाते संस्कृत साहित्य तो उनके लिए हस्तामलकवत् था, उसके अतिरिक्त साहित्य शास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत शास्त्र, धर्म, राजनीति आदि विषयों पर भी उनका अधिकार था, ऐसा उनके साहित्य के अध्ययन से प्रकट होता है। केशव का अनुभव, ज्ञान भी व्यापक था तथा उनकी कल्पना शक्ति प्रकृष्ट एव समृद्ध थी।

केशवदास का दृष्टिकोण

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग तक हिन्दी साहित्य का क्षेत्र भक्तिपरक काव्य से ही आप्लावित रहा। प्रत्येक धारा का कवि अपने हृदय से ईश्वर का अनन्य भक्त था तथा भगवान के प्रति भक्त का अनुराग भी अखण्ड था। प्रेमरस से स्नात भक्त का हृदय केवल ईश्वर-तादात्म्य का आकांक्षी था। ऐसी स्थिति में कवि की अन्तरात्मा जिस किसी भी रूप में व्यक्त हुई वही उस काल की सच्ची कविता कहलाई और इसमें सन्देह नहीं कि दो सौ वर्षों का यह भक्ति काव्य अपनी विशालता एवं गंभीरता मे अद्वितीय है।

भक्ति काव्य की इन दो शताब्दियों के अनन्तर हिन्दी साहित्य में एक अभिनव युग देखने में आया। इस युग को हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने रीतिकाल के नाम से अभिहित किया। इस नये युग में प्रवेश कर हिन्दी कविता के रचनाकेन्द्र परिवर्तित हुए। कविता लोकाश्रय को छोड़ राज्याश्रय की अधिकारिणी हुई। सामाजिक और राजनैतिक जीवन में शान्ति एवंम समृद्धि के लक्षण दृष्टिगत होने लगे। मुगल शासकों के राजभवनों की तो बात ही अलग, हिन्दू नरेशों के प्रासादों में भी चित्र, संगीत एव काव्य ऐसी कलाओं के प्रति यथेष्ट सम्मान प्रदर्शित किया जाने लगा। ओरछा दरबार एक ऐसा ही केन्द्र था जहाँ कविता तथा संगीत का समादर परंपरा से होता चला आता था। भूतल पर इन्द्र के समान यशस्वी इन्द्रजीतसिंह ऐसे महिपालों के राजप्रकोष्ट नवरंगराय तथा रायप्रवीण ऐसी कला-कुशला वारांगनाओं के कला प्रदर्शन की क्रीडास्थली बने रहते थे। ये वेश्याएँ आज की वेश्याओं के समान ऐहिक सुखोपभोग को ही अपना सर्वस्व समझने वाली न थीं, उनमें आत्मिक बल था तथा वे अकबर ऐसे प्रतापी शासक के प्रस्तावों को यह कह कर

बिनती रायप्रवीन की सुनिए साहि सुजान।
जठी पातर खात हैं बारी, बायस, स्वान॥

अस्वीकार करने की क्षमता रखती थी। कला का एकान्तिक प्रेम ही उनका जीवन था। संगीत एवं नृत्य कला मे प्रवीण ये राजनर्तकियाँ काव्य-कला की शिक्षा प्राप्त करने तथा कवि रूप मे समादृत होने के लिए कवि-कर्म की शिक्षा लिया करती थीं। राजदरबारों मे काव्यकला के समादर की अभिवृद्धि होते देख नए कवियो को तथा पारखी कहलाने के लिए स्वतः नरेशों को भी काव्य-कला की जानकारी रखना आवश्यक हो गया तथा उनको पडित कवियो की शरण में जाना पड़ा। सस्कृत-साहित्य का प्रकाण्ड पाण्डित्य लिए हुए केशवदास जी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में उस समाज से आए जिसमें रहने वाले भृत्य एवं अनुचर तक संस्कृत से नीचे बात नहीं करते थे। * केशवदास जी के पास सस्कृत के साहित्य और साहित्यशास्त्र का अच्छा अध्ययन था। कविता के सम्बन्ध मे उनकी अपनी चिन्तन शैली और विचारणा थी जिसे लेकर उन्होंने हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रवेश किया तथा रस एवं अलकार पर भी उन्होंने पाठ्य ग्रंथो की रचना की। 'रसिकप्रिया' की रचना उन्होंने राजप्रेरणा से की तथा कवि कर्म की शिक्षा देने के विचार से 'कविप्रिया' का निर्माण किया। इन दो ग्रंथों की रचना में केशव का उद्देश्य पाण्डित्य प्रकाशन न था, वरन् काव्य रचना के क्षेत्र में पदार्पण करते वाले नवीन कवियों को मार्ग दर्शन कराना था। इन दोनो रीति ग्रंथों का साधारण रूप मे निर्माण करते हुए भी केशव काव्याभ्यासियों के सामने आचार्य के रूप में आए। संभव है केशव के अनुकरण पर अन्यान्य रीति ग्रंथ बने हों पर ऐसे ग्रंथो का अभी तक पता नहीं चल सका है। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' की रचना करके केशव ने रीति ग्रथों के प्रणयन का मार्ग खोल दिया। परवर्ती आचार्यों ने अपने रीति ग्रथों में आचार्य केशव के मत एव विचारो का पोषण नहीं किया, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे चले उसी मार्ग पर जिसका प्रदर्शन उन्होंने किया था और इस दृष्टि से केशव का साहित्य के इतिहास में एक निश्चित स्थान है।

---

* भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि को मदमति तेहि कुल केशवदास॥ (कविप्रिया)

केशव ने अपने समय तक के समस्त हिन्दी साहित्य की प्रगति एवं विकास को देखते हुए भाषा को व्यापक बनाने और साहित्यिक उत्कर्ष देने का प्रयास किया, काव्य को विकसित एव उन्नत करने की चेष्टा की, अनेकानेक नूतन शैलियों का प्रयोग कर भावी साहित्य सेवियो के लिए अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया। इस दृष्टि से उनकी 'रतन बावनी' और 'विज्ञान गीता' का विशेष महत्त्व है, परन्तु इन सब के अतिरिक्त केशव की महान कवित्व शक्ति की परिचायिका है उनकी अमर कृति 'रामचन्द्रिका'। इसकी रचना कर वे सहज ही अन्य रीतिकालीन कवियों मे सर्वश्रेष्ठ हो जाते हैं। 'रामचन्द्रिका' मे काव्य का कला-पक्ष अपने उत्कर्ष की चरमसीमा तक पहुँचा हुआ दृष्टिगत होता है, उस पर हम अन्यत्र विचार करेंगे। यहाँ पर इतना कहना ही उपयुक्त होगा कि जिस प्रकार सूर, तुलसी, जायसी, कबीर, दादू और मीरा का भावनाप्रधान साहित्य अथाह है उसी प्रकार केशव तथा रीति कवियो का कलाप्रधान साहित्य भी अद्वितीय है।

हृदयहीनता का दोषारोपण कर केशव को आज उपेक्षित, तिरस्कृत एवं लाछित कवियों के वर्ग में खड़ा कर दिया गया है। उनकी कविता को आज रस और मनोविज्ञान के चश्मों से देखा जा रहा है जिससे केशव का स्वरूप कुछ विकृत सा दीख पड़ता है। यह अधिक उपयुक्त होगा यदि केशव के काव्य सम्बन्धी आदर्शों को ध्यान में रखते हुए हम उनके काव्य के सौन्दर्यान्वेषण में प्रवृत्त हो। केवल इस प्रकार कह देना कि—"केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमे वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। यह समझ रखना चाहिए कि केशव केवल उक्ति वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के प्रेमी थे",* सहानुभूतिशून्यता और अनुदार दृष्टि का परिचायक है। ऐसी समीक्षाओं का प्रतिवाद कब का किया जा चुका है—"केशवदास को हृदयहीन कह कर हम उनके प्रति अन्याय करते हैं क्योंकि एक तो उनकी हृदयहीनता जानी समझी हृदयहीनता है फिर अनेक स्थलों पर उन्होने पूर्ण सहृदय होने का परिचय दिया है।"†

---

* पं० रामचन्द्र शुक्ल

† डा० श्यामसुन्दरदास

सच तो यह है कि केशव एक प्रतिभाशाली आचार्य कवि थे। उन्होंने हिन्दी साहित्यक्षेत्र में एक भिन्न दृष्टिकोण लेकर प्रवेश किया, उनमें शास्त्रज्ञान की प्रधानता थी अतएव पाण्डित्य,और बुद्धि तथा कल्पनागत चमत्कार ही उनके काव्य का प्राण है। सूर, तुलसी और मीरा के सदृश केशव में भक्ति का उन्मेष न था, उनमें सूक्ष्म दृष्टि एवं बौद्धिकता की प्रधानता थी। वे भक्त कवि न होकर प्रधानतया रीति कवि थे। उन्हे भक्ति भावना का व्यापक प्रचार न कर, अपने पाण्डित्य एवं कला-चातुरी का प्रदर्शन इष्ट था। भाषाधिकार तथा भावगाभीर्य की दृष्टि से केशव का काव्य हिन्दी साहित्य के लिए अनमोल एवं गौरव की वस्तु है।

भावना की अभिव्यक्ति, मार्मिक भावों के चित्रण, आत्मानुभूति प्रकाशन तथा भक्ति के उद्रेक की दृष्टि से केशव सूर और तुलसी से अवश्य पीछे रह जाते हैं, पर अलकार विधान, छन्द वैविध्य, भाषा कौशल आदि दृष्टियों से केशव सूर-तुलसी से ऊँचे ठहरते हैं और इसी कारण वे नक्षत्र उपमित हैं जो साहित्य गगन के सूर्य और चन्द्र से भी ऊँचे प्रदेशों के अधिवासी हैं।

भक्तिकाल की भक्तिधारा के वेगपूर्ण प्रवाह में केशव भी बहे पर वे सूर तुलसी से भक्त न थे, जो उस प्रवाह में अरोक गति से बहते चले जाते हैं। वे राज्याश्रय प्राप्त कवि थे, उन्हें अपने मान और प्रतिष्ठा का भी ध्यान था, विपुल धनराशि को वे छोड़ न सकते थे* यही कारण है कि उनका रामकाव्य भी राजसिक ऐश्वर्य से मंडित मिलता है तथा उनके पाण्डित्य एवं ज्ञान का पूर्णतम प्रकाशन 'रामचन्द्रिका' में हुआ है।

हमें सूर और तुलसी की भक्ति का उन्मेष तथा भगवद्‌विषयक तल्लीनता की आशा केशव से न करनी चाहिए। सूर और तुलसी भक्ति का संबल लेकर काव्यपथ पर चले थे जबकि केशव का आधार साहित्यशास्त्र का ज्ञान था। पाण्डित्य ही उनके जीवन का मूल था, उनकी राजकीय प्रतिष्ठा का कारण था और वंशपरंपरा से प्राप्त निधि भी। तुलसी ने जिस प्रकार कहा था—

---

*भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग-जुग,
जाके राज केशोदास राज सो करत है।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥

उसी प्रकार कविकोटि निर्धारण करते हुए केशव भी कहते पाए जाते हैं—

उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि रस लीन ।

(कविप्रिया : चौथा प्रभाव)

परतु केशव काव्य में चमत्कार और वैचित्र्य तथा कला चातुरी पर अधिक ध्यान देते हैं, यह बात उनके प्रमुख ग्रंथों से निर्भ्रान्त रूप से अवगत होती है। इसीलिए हमें इन्हीं चीजों के उचित उत्कर्ष की आशा केशव से करनी चाहिए। प्रकार की दृष्टि से वे सूर और तुलसी से भिन्न कोटि के कवि हैं तथा कला के चरमोत्कर्ष काल के आदि आचार्य हैं।

केशव ने रामचरित्र के श्रेष्ठ धागे मे युक्तिपूर्वक काव्य-सुमनों को गूँथा है, इसी कारण उनके काव्य में राम के यश का वर्णन तथा उस वर्णन की कुशल युक्तियों, रीतियो अथवा साधनों का प्रयोग मिलता है। अपने युग के वातावरण का प्रभाव प्रत्येक कवि को ग्रहण करना पडता है। केशव राम और कृष्ण को छोड़कर नहीं चल सकते थे। भक्तिकाल के वैष्णवभक्ति मूलक काव्य को आधार रूप में ग्रहण कर जहाँ उन्होने एक ओर रामकाव्य की परंपरा को अपने योगदान से संवर्धित किया, वहीं पर दूसरी ओर काव्य के एक नए स्वरूप को भी जन्म दिया। केशव के 'रामचन्द्रिका' के प्रणयन के उद्देश्य का उद्घाटन करते हुए हरिऔधजी लिखते हैं—"रामचन्द्रिका की रचना पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए हुई है और मैं यह दृढता से कहता हूँ कि हिन्दी संसार में कोई प्रबन्ध काव्य इतना पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। केशव संस्कृत के पूर्ण विद्वान थे। उनके सामने शिशुपाल वध और नैषध का आदर्श था। वह उसी प्रकार का काव्य हिन्दी में निर्माण करने के उत्सुक थे। इसीलिए रामचन्द्रिका अधिक गूढ है। साहित्य के लिए सब प्रकार के ग्रंथों की आवश्यकता होती है। यथास्थान सरलता और गूढता दोनों वाञ्छनीय हैं। उनको (केशव को) यही अभीष्ट था कि उनकी एक ऐसी रचना भी हो जिसमें गंभीरता हो और जो पाण्डित्याभिमानी को भी पाण्डित्य-प्रकाश का अवसर दे अथच उसकी विद्वत्ता को अपनी गंभीरता की कसौटी पर कस सके। इस बात

को हिन्दी के विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।"* इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हमें केशव के काव्य का अनुशीलन करना चाहिए। केशव ने स्वतः लिखा है—

रामचन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहु छन्द।

अर्थात् काव्य में विविध छन्दात्मकता जान-बूझ कर रक्खी गई है। इसी प्रकार उनके काव्य का भी एक आदर्श है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त॥

तदनुसार उनके काव्य में अलङ्कृत विधानों का सौन्दर्य प्रधान रूप से मिलेगा। रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों ने अलंकारों द्वारा काव्य के अन्तर्गत प्रतिष्ठित सौन्दर्य को विशेष महत्व दिया है। सेनापति भी केशव के स्वर में स्वर मिलाकर कहते हुए पाए जाते हैं—

दूपन कों करि कै कवित्त बिन भूपन को
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है।
रामै अरचत सेनापति चरचत दोऊ
कवित रचत याते पद चुनि चुनि है॥

(कवित्तरत्नाकर : पहली तरंग)

अर्थात् अलंकार विहीन काव्य लिखकर ऐसा कौन देवता या मुनि है जो स्थायी कीर्ति प्राप्त कर सकता है, फिर भला बेचारा मनुष्य किस गिनती में है। इस कथन में आंशिक सत्य अवश्य अंतर्निहित है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

केशवदासजी ने अपने काव्य को रामकथा के धागे में आबद्ध अवश्य किया है, किन्तु उनकी दृष्टि कथा को रमणीय बनाकर उसे आगे ले चलने की ओर उतनी नहीं है जितनी रुक-रुक कर, बिलम बिलम कर वाटिकाओं, सरोवरों, प्रासादों एवं चन्द्रादिकों, युवक-युवतियों की शोभा देखने-दिखाने की ओर। कहा जा

---

* हिन्दी साहित्य का विकास।

सकता है कि उन्होंने कथासूत्र को कोई महत्व दिया ही नहीं है, सचमुच वह सूत्र ही बन कर रह गया है। अतः हमें कवि से कथा-सौन्दर्य, मार्मिक स्थलों की रमणीयता के चित्रण और चरित्रों के अंकन की विशेष आशा न करनी चाहिये। इनके स्थान पर वर्णन, सवाद, नवीन काव्योद्भावनाएँ, चमत्कृत अभिव्यजना, अलंकार विधान, छन्दों की विविधता आदि पर कवि ने विशेष ध्यान दिया है। इसलिए हमें काव्य सौन्दर्य तथा उनके अभिवर्धक उपादानों की ही परीक्षा करनी चाहिए और हमें यह न भुला देना चाहिए कि कवि कथा न लिखकर काव्य लिख रहा था। कथा सम्बन्धी प्रत्येक स्थल को यथाशक्ति सक्षिप्त करता हुआ कवि कला-कौशल प्रदर्शन का कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं देता, कहीं भी वर्णन का प्रसग आया, अपनी समस्त कल्पना की विभूति से वह उसे समृद्ध कर देता है। कथा में पाठक को कोई रस नहीं मिलता परन्तु फिर भी काव्य के प्रति उसका आकर्षण बना ही रहता है क्योंकि केशव की 'रामचन्द्रिका' में उसे एक काव्य मर्मज्ञ का कौशल देखने को मिलता है। वह कवि प्रतिभा का ऐसा उत्कृष्ट प्रकाशन देखकर क्षण भर के लिए आश्चर्यचकित हो जाता है। अलंकारों के नूतन प्रयोगों, नवीन विभावनाओं तथा वर्णनों के सौन्दर्य में उसका मन रम जाता है। कवि वर्णनों की झड़ी लगा देता है और पाठक उन्हें देखता ही रह जाता है।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' के सभी प्रकाशों में वर्णन प्रचुरता से रक्खे हैं। जिस प्रकाश में वर्णनों का अभाव है वहाँ उनकी पूर्ति सवादों द्वारा हुई है। रामचन्द्रिका में वर्णन की इस बहुलता एव केशव के वर्णनप्रियता की मनोवृत्ति की पुष्टि उनकी कविप्रिया से पूर्णतः हो जाती है। अलकारवादी केशव ने 'वर्णन' को भी अलंकार माना है। उनके 'वर्णन' अलंकार के क्षेत्र में सभी कविपरिपाटी विहित वर्णन के विषय आ जाते हैं जिनके स्थूल रूप से उन्होंने चार भेद किए हैं—(१) वर्णालकार वर्णन (२) वर्ण्यालंकार वर्णन (३) भूमि भूषण वर्णन (४) राज्यश्री भूषण वर्णन। इससे स्पष्ट ही है कि केशवदास जी काव्य में वर्णन को विशेष महत्व देते थे। यह कहना कदाचित् अनुपयुक्त न होगा कि केशव की 'रामचन्द्रिका' इन विस्तृत वर्णनात्मक अंशों से पृथक् होकर प्राणहीन काया

के समान हो जायगी। उनका सामान्यालंकार ही, जिसके अंतर्गत समस्त वर्णनीय विषय आते हैं, उनके विशिष्टालंकारों की क्रीड़ास्थली है। अपने वर्णनों में ही केशव अपनी कुशलता की चरम अभिव्यक्ति कर सके हैं।

केशव के सवाद, उनकी विविध छन्दात्मकता, काव्य-प्रवीणता और नूतन उद्‌भावनाएँ उनके काव्य-शरीर के अन्य चार तत्व हैं। वर्णन ही वह प्राण-तत्व है जिसमे उनका समस्त काव्य स्पन्दित हो रहा है।

अधीत कवि केशव ने राम कथा को उठाया, उसे महाकाव्य के अनेक गुणों से अलंकृत किया, मुक्तकों का लावण्य भरा, विविध रसों की सृष्टि की, काव्य के अन्य आवश्यक उपादानों का संचयन किया तथा विविध छन्दात्मकता, चमत्कृत अलकरण एवं वर्णनात्मकता के मौलिक संयोजन से एक नवीन काव्य-स्वरूप को जन्म दिया है। विविध छन्दात्मक शैली में लिखा जाने वाला 'रामचन्द्रिका' ऐसा महाकाव्य निश्चय ही हिन्दी संसार ने दूसरा नहीं देखा।

रामचंद्रिका

रामचन्द्रिका एक प्रबन्ध काव्य है, जिसका वर्ण्य विषय राम की कीर्ति का गान है। इस मे कथाक्रम तो वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही स्वीकृत किया गया है और केवल कुछ स्थलों पर अपनी ओर से कवि ने कथागत परिवर्तन उपस्थित किया है। उदाहरण के लिए परशुराम और राम के झगड़े को स्वयं शकर जी प्रकट होकर समाप्त कर देते हैं या चित्रकूट में भरत के प्रबल आग्रह पर भी राम को वापस न जाते देख स्वयं गंगा जी प्रकट होकर भरत को समझा बुझा देती हैं। केशव की रामचन्द्रिका को देखने से यह पता चलता है कि कथा के सुन्दर निर्वाह की ओर इनकी रुचि नहीं थी। ये प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक प्रकाश (सर्ग) में दो चार वर्णन अवश्य देते हैं। वह वर्णन चाहे रूप का हो, चाहे प्रकृति का हो, चाहे कृत्रिम जगत का हो। जहाँ ये चीजें न हों, वहाँ संवादो का कौशल ही मिलेगा। इसी कारण लाला भगवानदीन ऐसे साहित्य-समीक्षकों ने यहाँ तक कह डाला है कि केशव का काव्य पढ़ने से भास के नाटकों जैसा मज़ा आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि केशवदास अपने इस काव्य में प्रबन्धात्मकता की उपेक्षा कर वर्णनात्मकता की स्थापना करना चाहते थे। केशव ने काव्यशास्त्र की परम्पराओं का ध्यान रखते हुए एक ऐसा महाकाव्य लिखना चाहा जो शास्त्रानुमोदित होते हुए भी अपनी विशिष्टताएँ रखता हो। छंदान्तर शैली में लिखी जाने वाली रामचन्द्रिका हिन्दी के महाकाव्यो में एक अद्भुत प्रयोग है और इसी में कवि की मौलिकता है।

केशवदास वर्णन को भी अलंकार मानते थे। इस विचार-धारा पर आचार्य दंडी और भामह की परम्परा की छाप है जिसमे अलंकार और अलंकार्य का भेद न हो सका था। पुरानी परिपाटी के अनुसार कविता लिखने के लिए ससार की सभी वस्तुएँ काव्य का वर्ण्य-विषय नहीं बन सकतीं। यदि प्रकृति का वर्णन करना हो तो निम्नलिखित वस्तुओं का वर्णन करना ही पर्याप्त होग।—

देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के भूषण रितु सब काल॥

इन सब के विस्तृत वर्णन हमें रामचन्द्रिका मे मिलेंगे। इस प्रकार रामचन्द्रिका एक वर्णन-प्रधान महाकाव्य है। वर्णनो का जितना कुछ भी विस्तार केशव मे है उतना अन्यत्र नहीं। कथा-सम्बन्धी प्रत्येक स्थल को छोटा करके काव्य-प्रतिभा प्रकाशन के किसी भी अवसर को वह हाथ से जाने नहीं देते। अधीत कवि और शास्त्रीय काव्य के इस मर्मी मे अलकारों को विलक्षण प्रयोग, संवादो की कुशल योजना तथा नवीन उद्भावनाये खूब देखने को मिलेगी। वर्णनात्मक सौन्दर्य के कुछ स्थल देखिए—

शुभ द्रोण गिरि गण शिखर ऊपर उदित औषधि सी गनौ।
बहु वायु वश वारिद बहोरहि अरुझि दामिन दुति मनौं॥
अति रुचिर किधौं प्रताप पावक प्रकट सुरपुर को चली।
यह किधौं सरित सुरेश मे री करी दिवि खेलत भली॥

अयोध्या-नगरी का यह वर्णन ऊची कल्पना से युक्त है। महामुनि विश्वामित्र के मुख से निःसृत यह अवध-वर्णन रघुवंश की कीर्ति का प्रकाशक है। ऐसे अवध-पुरी की छवि देखते ही बनती है। सभी तरफ सुन्दर सद्म बने हुए हैं, दंदुभि-नाद हो रहा है, ब्राह्मण-मंडली वेद-मंत्रो का उच्चारण करती है। ऐसी पवित्रता को देख कर स्वयं ऋषीश्वर का मन मोहित हो जाता है। यह तो वह स्थान है जहाँ राम का प्रेम जन-जन में समाया हुआ है। इसी सम्बन्ध मे एक दूसरा छन्द देखिये—

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चितामणि नारि।
बहु शत मख-धूमनि-धूपित अ'गन हरि की सी अनुहारि॥
चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रन केशवदास निहारि।
जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि॥

अयोध्या नगरी मे प्रत्येक प्रासाद मे जो चित्रकारी थी, वह देखते ही बनती है। प्रत्येक महल लोकेतर चित्रकला के स्वरूप से अभिमडित है। सारी अयोध्या

ब्रह्म के प्रतिबिम्ब के समान भासमान हो रही है। उसे "विश्व रूप का अमल आरसी" कह कर कवि ने यह व्यंजित किया है कि महाराज दशरथ की गति समस्त लोक-लोकान्तरों मे है तथा स्वय दशरथ इन्द्र से भी अधिक शौर्य और ऐश्वर्य वाले हैं, क्योंकि त्रेता युग में सौ राजसूय यज्ञ करने वाले को इन्द्र की पदवी प्राप्त होती थी। यज्ञ के धूम्र से अनुरंजित श्यामलवर्णा अयोध्या भगवान के प्रतिरूप सी प्रतीत होती थी। ऐसी भव्य और पावन कल्पना अनेक स्थलो पर मिलेगी।

सीता-स्वयंवर का वर्णन करने मे भी केशव ने अपनी लेखन-शक्ति का अपूर्व परिचय दिया है। राजसभा की शोभा अपनी समस्त विभूतियों के साथ आँखों के सामने छा जाती है, जब हम यह छन्द देखते हैं—

शोभित मंचन की अवली गजदंत मयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई॥
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यौं जनु देव सभा शुभ सीय स्वयंवर देखन आई॥

जो उज्ज्वल वातावरण सीता स्वयवर का यहाँ उपस्थित है वह कितना देवोपम है और पवित्रता से ओतप्रोत है ! ऐसे अनुपम वर्णनों से तो यह महाकाव्य भरा पड़ा है। सीता के मुख का वर्णन करते हुए कवि ने अपनी कल्पनाशक्ति का पूरा उपयोग किया है। उन्होने कहीं-कही तो व्यजना-पद्धति का सहारा लिया है और सीताजी की परिचारिकाओ का वर्णन करते हुए सीता की रूप-छटा व्यजित की है। अन्त में कवि के अलंकारिक वर्णन से पूर्ण एक छंद देकर उस प्रसंग को समाप्त करता हूँ—

राघव की चतुरंग चमूचय केशव को गनै राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझे पग तुंग पताकन की पट साजनि॥
केशव टूट परे तिनते मुकता उपमा बरनी कवि राजनि।
बिन्दु किधौं मुख फेननि को किधौं राजसिरी द्रव मंगललाजनि॥

संदेहालंकार के सहारे कवि की उज्ज्वल कल्पनाशक्ति देखने योग्य है। जहाँ भी अप्रस्तुत-योजना ले आने का प्रश्न होता है, केशव पीछे रहना जानते ही

नहीं। पताकाएँ इतनी ऊँची हैं कि उनमे सूर्य के रथ मे जुते हुए घोड़ों के पैर उलझ जाते हैं। पताकाओं में जड़ी हुई मोतियों के अधःपात के दृश्य पर कवि की उपमा देखने योग्य है और उसकी सूझ सराहने योग्य।

महाकाव्यों की रचना में चरित्र-निर्माण का एक विशिष्ट महत्व होता है। केशवदास के द्वारा निरूपित चरित्र उसी मर्यादा को ले कर चले हैं जिसे हम वाल्मीकि और तुलसी में पाते हैं। अनेक पात्रों के व्यवहार और वार्तालाप मे कवि का निजी व्यक्तित्व और अनुभव उभर पड़ा है। उदाहरण के लिए अंगद ऐसे वानर में भी राजमर्यादा का समुचित ध्यान देखने को मिलेगा। वह राजोचित शिष्टता से ही पेश आवेगा, चाहे शत्रु रावण का ही दरबार क्यों न हो। राक्षस-पत्नी मन्दोदरी के लिए भी उसकी शिष्ट वाणी मे 'देवि' का शब्द रहेगा। वह उजड्ड दूत के समान ऐसा नहीं कह सकता—

मैं तुव दसन तोरिबे लायक।
आयसु पै न दीन्ह रघुनायक॥

रावण के चरित्र में वाक्पटुता और कूटनीतिज्ञता का समावेश कवि की मौलिकता है। आवेश के वश में होकर मैथिलीशरणजी की तरह केशव लक्ष्मण से अनुचित और निम्नजनोचित वाणी नही कहलाते। सीता के चरित्र की उच्चता की ओर कवि अनेक स्थलों पर सुन्दर संकेत करता है यथा—

घाम को राम समीप महाबल
सीतहि लागत है अति सीतल

तथा

मारग की रज तापित है अति,
केशव सीतहि सीतल लागति।

इसका कारण कवि ने स्वयं दिया है—

ज्यौं पद पंकज ऊपर पायनि,
दै जु चलै तेहि ते सुखदायनि।

सीता को कठोर वन में भी कोई कष्ट नहीं है क्योंकि वह पति का पदानुसरण करती चल रही है। इस प्रकार चरित्रों के निर्माण मे कवि ने सकेत और व्यंजना का आश्रय लिया है।

इसी सम्बन्ध मे दो बातें और ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि तेजस्विता और उग्रता के प्रकाश का जहाँ भी अवसर आया है, कवि अपनी ओजमयी वाणी में फूट पड़ा है, यथा परशुराम-राम प्रसंग, रावण-चारण प्रसंग अथवा लवकुश-राम युद्ध प्रसग में। युद्धादि के प्रसंगो का वर्णन कवि ने अद्वितीय चातुरी से किया है। एक छन्द में कवि ने यह दिखलाया है कि अपनी बीस भुजाओ मे से दो भुजाओं से तो रावण राम से युद्ध करता है तथा शेष अठारह से अठारह प्रकार के आयुधों से राम सेना के अठारह भिन्न-भिन्न वानरो पर प्रहार करता है। दूसरी बात यह कि रामचन्द्रिका मे राम के राजस्वरूप का ही दिग्दर्शन कराने का यत्न किया गया है, तुलसी के समान ऐसे स्वरूप का नहीं, जिसके प्रति रह-रहकर हृदय की भावना भक्तिमय हो उमड़ती चली जाय। इसका मूल कारण है केशव और तुलसी के व्यक्तित्व और परिस्थितियो में अन्तर।

सवादात्मक कौशल और प्रकृति-चित्रण जिस अपूर्व रूप मे रामचन्द्रिका में प्राप्य हैं उनके लिए तो स्वतन्त्र लेख अपेक्षित हैं।

अंत में महाकवि के महाकाव्य में आवश्यक मर्मस्पर्शी और रसात्मक स्थलो की भी जाच हो जानी चाहिए। अभी तक केशव को हृदयहीन कहने की भ्रामक धारणा चली आ रही है। इस सम्बन्ध में यहाँ तो केवल इतना कथन ही अलं होगा कि जो कवि अपने वार्धक्य में भी इतने अनुताप भरे शब्दो में जगतव्यापी स्वर मे कह सकता हो कि—

चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं।

वह हृदय-रहित कैसे हो सकता है, यह समझ में नहीं आता। इस कवि की यह एक पंक्ति जब तक जन-समाज के बीच मे प्रचलित है, केशव को हृदयहीन कहने के लिए दुनिया भर के सारे तर्क व्यर्थ हैं। यदि किसी सहानुभूतिपूर्ण आलो-चक को केशव का हृदय देखना हो तो उठा ले रसिकप्रिया और पलट जाय उसके

पृष्ठों को। वहाँ तो रस का ऐसा अविरल स्रोत बह रहा है कि डूबते-उतराते ही बनेगा।

केशव अपने आदर्शों और सैद्धान्तिक मान्यताओं का पक्का कवि है। काव्य की आत्मा रस नहीं है, इस विचारधारा पर ही तो उसका समस्त काव्य आधारित है, किन्तु रस का सर्वथा अभाव भी वे काव्य के लिए उपयोगी और हितकर नहीं समझते। वरन् वे तो रसाभाव को काव्य मे एक दोष गिनते हैं। इस कारण उनके काव्य मे अनेक स्थलों पर शृंगार, करुण, वीर, रौद्र आदि के सुन्दर स्वरूप मिलेंगे।

इसी प्रकार मार्मिक स्थलों की उनकी कविता में कमी भले ही हो, नितांत शून्यता नहीं। जहाँ पर भी उन्होंने मर्मस्पर्शी स्थल उठाए हैं, हृदय रखने की पूर्ण क्षमता दिखला गए हैं। उक्त कथन की पुष्टि के लिए रामचन्द्रिका के कुछ भाव-व्यंजक स्थल देखिए—

विश्वामित्र जी के साथ राम का वनगमन के समय का दृश्य—

राम चलत नृप के युग लोचन। वारि भरित भए वारिद रोचन।
पायनि परि ऋषि के सजि मौनहि। केशव उठि गये भीतर भौनहिं।

यह मौन महाराज दशरथ के हृदय की व्यथा की कैसी सच्ची व्यंजना देता है। इसी प्रकार चित्रकूट में बनवासी राम का जब माताओं से साक्षात्कार होता है—

तब पूछियौ रघुराइ, सुख है पिता तन माइ ?
तब पुत्र कौ मुख जोइ, क्रम क्रम उठीं सब रोइ।

यहाँ पर राम के प्रश्न का उत्तर न देकर लाड़ले का मुँह देखना और स्वर्ग सिधारे हुए पति की सूचना अपने करुण रुदन से दे देना, कितना मनोवैज्ञानिक है। इस प्रकार करुण स्थितियों के चित्र देने मे जहाँ भी कवि ने किंचित प्रयास किया है, उसे असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। अशोकवाटिका मे सशोक सीता की दशा का यथातथ्य चित्र देखिए—

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृनाली मनो पंक तें काढि डारी॥

यहाँ उत्प्रेक्षा की मनस्थित-व्यंजकता अनुपमेय ही है।

कवि ने एक अन्य प्रसिद्ध छन्द 'ब्रज कौ अखर्व गर्व गंज्यो जाहि पर्वतारि" ' में स्थायी भाव उत्साह की उद्दीप्त कर अनुभवों के सहारे वीर रस की निष्पत्ति की है। ऐसे ही सत्रहवें प्रकाश मे लक्ष्मण को शक्ति लगने के प्रसंग मे कवि ने अपनी अनुभूतियों के सहारे मानव-मर्म का स्पर्श कर हृदय से हृदय का सामंजस्य स्थापित कर दिया है। इस स्थान पर भी कवि की शास्त्रीय भाव-प्रकाशन-प्रणाली नहीं छूटी है, किन्तु शास्त्रीयता और स्वाभाविकता का ऐसा मिश्रण, जो पता ही न चल सके, शायद ही कहीं मिले।

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो
नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो।
वारक लक्ष्मण मोहिं विलोकौ
मोकहँ प्राण चले तजि रोकौ॥

लोचन बान तुही धनु मेरो
तू बल विक्रम वारक हेरौ।
तू बिन हौं पल प्रान न राखौं
सत्य कहौ कछु झूठ न भाखौं॥

इस शोक भाव की शान्ति मे रोष भाव का उदय देखिये—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व व्यसु॥

एक बार तो लक्ष्मण के प्रति राम की दैन्य और करुण मिश्रित पुकार है और दूसरी बार आत्मशक्ति का स्मरण कर सृष्टि को पलट देने का दृढ़ निश्चय। दोनों भाव नितान्त समयोचित हैं और अवसरानुकूल। इस प्रकार अनेकानेक भावों और रसों की सुन्दर और प्रभावपूर्ण संस्थिति इस काव्य में मिलेगी। कहीं शान्त, कहीं

भयानक, कहीं शृंगार का वियोग पक्ष। अलंकारिक विधान और विविध छन्द रामचन्द्रिका के आकर्षण तत्व हैं। अनुपम भाव रत्नो तथा विचारों से संवलित यह महत्कृति हिन्दी साहित्य के लिए एक स्थायी निधि है, और परम गौरव-शालिनी सपत्ति।

रामचन्द्रिका में प्रकृति-चित्रण

रीति काल के सभी आचार्य-कवियो मे कृपाराम, देव, भिखारीदास आदि ने रस-निरूपण करते हुए प्रकृति को शृंगार के उद्दीपन-विभाव के रूप में स्वीकार किया है। देव को देखिये—

गीत नृत्य उपवन गवन आभूषन बन-केलि।
उद्दीपन शृंगार के, विधु बसन्त बन-बेलि॥

(भाव-विलास)

भिखारीदास ने भी इसी प्रकार प्रकृति को उद्दीपन-विभाव के उदाहरण-रूप मे प्रस्तुत किया है—

घरि धुनि बोलै थँमि-थँमि भर खोलै मंडै।
करत कलोलैं बारि बाहक अकास में॥
नृत्यत कलापी झिल्ली पिक है अलापी।
विरहीजन विलापी है मिलापी रस-रास मै॥

(काव्य-निर्णय)

किन्तु केशवदास ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होने समस्त परंपरा के विरुद्ध प्रकृति को काव्य के स्वतंत्र आलंबन के रूप में स्वीकार किया है—

(अथ आलंबन स्थान वर्णन)

दंपति जोबन रूप जाति लक्षणयुत सीख जन।
कोकिल कलित बसन्त फूलि फल दलि अलि उपवन॥
जलयुत जलचर अमल कमल कमला कमलाकर।
चातक मोर सुशब्द तड़ित घन अंबुद अम्बर॥
शुभ सेज दीप सौगन्ध गृह पान खान परधानि मनि।
नव नृत्य भेद वीणादि सब आलंबनि केशव बरनि॥

(कवि-प्रिया)

प्रकृति वर्णन के सम्बन्ध में केशव के कुछ निजी विचार थे जिनका पूरा ध्यान रखते हुए उन्होंने अपने वर्णनात्मक महाकाव्य रामचन्द्रिका में प्रकृति का वर्णन किया है। उनके मत में जिस प्रकार भावना बिना सुरुचिपूर्ण शब्दावली एवं अलकृत विधानों से संयोजित हुए सौन्दर्यान्वित नही होती, उसी प्रकार वर्ण्य-विषय भी विना उपयुक्त मनोनयन के आकर्षक नही हुआ करते। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ काव्य का विषय नही बन सकता। प्रकृति के वे ही रमणीय उपादान कवि के वर्ण्य-विषय हो सकते हैं जिन पर पूर्व कवियों की लेखनियाँ चल चुकी हैं। वे आज के कवियों की भाँति जड़ प्रकृति में चेतन सत्ता का आभास नहीं पाते थे, और न ही प्रकृति की प्रेरक शक्ति से उनकी आत्मा परिचालित हो उन्हे छायावादियों के समान ऐसा कहने को बाध्य करती थी—

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन!

(पंत)

साथ ही वे प्रकृति की रमणीयता में अत्यंत मग्न हो संसार से विमुख भी नहीं हो जाते। इस प्रकार की स्वच्छन्दतावादी प्रकृति जो अपने साहित्य की नई धारा में परिलक्षित हो रही है, वह बहुत कुछ अँग्रेजी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी क्रान्ति (Romantic Revolution) के प्रभाव के फलस्वरूप है। अँग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ प्रकृति के क्षुद्रतम पदार्थ से प्रभावित हो अपने भावागार को काव्य के प्याले में उड़ेल देते थे, शेली प्राकृतिक पदार्थों के संसर्ग से कल्पना-लोक में विचरण करने लगते थे और कीट्स प्रकृति का सान्निध्य पा अल्प-काल के लिए जगत की जटिलता से पलायन कर जाते थे, पर इस प्रकार की कोई प्रवृत्ति हमें केशव मे देखने को नही मिलती। सूर आदि अवश्य कभी-कभी एक अलौकिक प्राकृतिक वातावरण की कल्पना करते पाए जाते हैं—

चल सखि तिहि सरोवर जाहिं ।
जिहि सरोवर कमल कमला रवि विना विकसाहिं ।
हंस उज्जवल नीर निर्मल अंग मलि मलि न्हाहि ॥ आदि ।

किन्तु यह सारा सुन्दर और रमणीय वातावरण भगवद्सत्ता के फलस्वरूप कल्पित हुआ है । अंग्रेज़ी साहित्य में ही स्वच्छन्दतावादी युग के पूर्व जिस प्रकार की वर्णन प्रधान रचनाएँ हुआ करती थीं वे केशवदास की प्रवृत्ति के बहुत कुछ मेल में पड़ती हैं । इन क्लैसिक कवियों को प्रकृति के उस रूप का चित्रण करने मे आनंद मिलता है जो कृत्रिम अथवा मनुष्यकृत था । पोप, ड्राइडन आदि इसी क्लैसिक अथवा ऑगस्टन सप्रदाय (Classic or Augustan School) के कवियो मे थे, जिन्होंने निश्चित रचना-पद्धतियों का अनुसरण करते हुए प्रकृति के कुछ चुने हुए और सुरम्य रूपों तक ही अपने काव्य को सीमित रखा । ये एक प्रकार से रीति-कवियों के ही समान थे । पूर्व निश्चित विषयों पर ही कविता करने की एक परिपाटी बन गई थी जिनको न मानना भारी दोष माना जाता था । केशवदास ने भी इस प्रकार सस्कृत-साहित्य-शास्त्रोल्लिखित कवि-परिपाटी का अनुसरण करते हुए काव्य-रचना की । 'कवि-प्रिया' मे उन्होने उन विषयो का स्वतः नाम गिनाया है जिनका वर्णन प्रकृति के अतर्गत हो सकता है—

देश नगर वन बाग गिरि आश्रम सरिता ताल ।
रवि शशि सागर भूमि के भूषण ऋतु सब काल ॥

'रामचन्द्रिका' मे प्रकृति के ये सभी अग यथास्थान वर्णित हुए हैं ।

सस्कृत साहित्य में भी प्रकृति-चित्रण की दो प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं । एक तो उन प्रकृति के प्रेमी और निरीक्षक कवियो की श्रेणी है जो प्रकृति के ऐसे ऐसे दृश्य अंकित कर गए हैं जिनसे उनका प्रकृति के प्रति मोह एवं निरीक्षण की सूक्ष्मता का पता चलता है । वाल्मीकि, कालीदास और भवभूति इसी श्रेणी के कवि हैं । दूसरी श्रेणी उन कवियों की है जिनकी प्रवृत्ति प्रकृति के यथातथ्य चित्रण की ओर न होकर चमत्कार उत्पन्न करने की ओर थी । उनके द्वारा किए गए प्राकृतिक वर्णनों में उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तर-न्यास आदि की सज्जा

मिलती है। माघ, श्रीहर्ष और बाण इसी श्रेणी के कवि थे। ये दूसरी श्रेणी के कवि ही केशव के आदर्श थे।

केशव के प्रकृति सम्बन्धी विचारो के सम्बन्ध में दो बाते और ज्ञातव्य हैं। एक तो यह है कि भारतीय विचारधारा में प्रकृति को ब्रह्म से पृथक् करके नहीं माना गया है, उसे कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं दी गई है। वह केवल अवतारी महापुरुषों की सहगामिनी, अनुचरी अथवा आज्ञानुवर्तिनी मानी गई है, इसी कारण बहुत समय तक हिन्दी साहित्य में प्रकृति आलंबन रूप मे पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ चित्रित नहीं की गई है। इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण जो हमें इधर मिलने लगा है, वह अँग्रेज कवियो के प्राकृतिक-वर्णनों के प्रभावस्वरूप है और काव्य-साहित्य की एक नवीन धारा है। केशव परंपरानुगामी होने के नाते प्रकृति का चित्रण कादंबरी, शिशुपालवध और नैषध के आदर्शों को ध्यान में रखते हुए करते हैं। दूसरी बात यह है कि केशव काव्य में अलंकारों का स्थान प्रधान समझने वाले चमत्कारवादी कवि थे, अतः उनके प्रकृति-वर्णनो में अलंकारों की संश्लिष्ट योजना ही प्रधान मिलेगी।

अलंकृत वर्णन—'केशव की रामचन्द्रिका में प्रकृति वर्णन के स्थल दो परंपराओं का अनुसरण करते हैं। पहली मे रामायण की कथावस्तु के अनुसार प्रकृति-स्थलो के चुनाव की परपरा है, जिसमें वन-गमन में मार्ग स्थित वन का वर्णन, पञ्चवटी का वर्णन, पंपासर का वर्णन तथा प्रवर्षण पर्वत पर वर्षा तथा शरद् का वर्णन आता है।* इनके अतिरिक्त कुछ प्रकृति-स्थलों को केशव ने महाकाव्यों की परपरा के अनुसार उपस्थित किया है। इनमें से सूर्योदय का वर्णन तो कथा के अन्तर्गत ही आ जाता है, पर प्रभात-वर्णन, चन्द्र-वर्णन, उपवन-वर्णन और जलाशय-वर्णन महाकाव्यो के आधार पर लिए गए हैं। केशव ने

---

*रामचन्द्रिका में : वन-वर्णन, प्रकाश ३ छन्द २—३; पंचवटी वर्णन, प्र० ११ छ० १६—२३; पंपासर-वर्णन, प्र० १२ छ० ४४—४६; प्रवर्षण पर वर्षा और शरद्, प्र० १३ छ० १२—२७।

कृत्रिम पर्वत और नदी का वर्णन किया है † जिनका उल्लेख संस्कृत काव्यों में क्रीडा शैल के नाम से हुआ है। यह राजसी वातावरण का प्रभाव माना जा सकता है। केशव संस्कृत के पंडित थे और हिन्दी के आचार्य कवियों में हैं। ये अपनी प्रवृत्ति मे अलंकारवादी हैं। इन कारणों से इनके वर्णनो में संस्कृत के कवियो का अनुकरण और अनुसरण दोनो ही मिलता है। इन्होंने प्रमुखतः कालिदास, बाण, माघ तथा श्रीहर्ष से प्रभाव ग्रहण किया है। कालिदास की कला का तो यत्र-तत्र अनुकरण मात्र है, अधिक प्रेरणा इनको अन्य तीन कवियों से मिली है। ऐसा नहीं हुआ है कि केशव ने किसी एक स्थल पर एक ही शैली का अनुसरण किया हो। वस्तुतः किसी एक प्रकृति रूप को उपस्थित करने में इन्होंने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। इसका कारण है। केशव का उद्देश्य वर्णनो को अधिक प्रत्यक्ष तथा भावगम्य बनाने का नहीं हैं। उनके सामने प्रकृति का कोई रूप स्पष्ट नहीं है। वे तो वर्णन-शैलियों के प्रयोग के उद्देश्य को लेकर चलते हैं। ‡ इसमें सदेह नहीं कि केशव की दृष्टि वस्तु चित्रण पर न थी। कवि द्वारा प्रस्तुत वर्षा का वर्णन देखिये—

घनघोर घने दशहूँ दिशि छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध विना क्षिति के तन ताये। तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानौ। निरघात सबै पवि पात बखानौ॥
धनु है यह गौरमदाइन नाहीं। शरजाल बहै जलधार वृथा हीं॥

यह सत्य है कि यह प्राकृतिक वर्णन प्राकृतिक प्रेम से प्रेरित नहीं वरन्, कवि की चमत्कारप्रिय मनोवृत्ति की उपज है। वर्ण्य-विषय की यथातथ्यता की ओर कवि की दृष्टि नहीं है, वरन् उसका सारा प्रयत्न शब्द सौन्दर्य निदर्शन तथा

---

†सूर्योदय-वर्णन, प्रकाश ५ छन्द १०—१५; प्रभात-वर्णन, प्र० ३० छु० १८—२३; वसंत-वर्णन, प्र० ३० छु० ३२—४०; चन्द्र-वर्णन, प्र० ३० छु० ४१—४६; उपवन-वर्णन, प्र० ३२ छु० ३—२०; जलाशय-वर्णन, प्र० ३२ छु० २३—३६; कृत्रिम पर्वत और नदी, प्र० ३२ छु० २१—२३।

‡डा० रघुवंश कृत प्रकृति और हिन्दी काव्य पृ० २६५—६६।

अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक अपह्नुति की छटा दिखलाने की ओर है । इसी प्रकार सूर्योदय का प्रसिद्ध वर्णन भी देखिये—

अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय ।
मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेममय ॥
परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट ।
किधौ शक्र को छत्र मढ़्यो माणिक मयूष पट ॥
कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को ।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को ॥

यहाँ सूर्य की अनुरंजित छटा दिखाना कवि का अभीष्ट नहीं वरन् अपने कल्पना का वैभव दिखलाना ही उसका अभिप्रेत है । प्रातःकालीन सूर्य की अरुण प्रभा को देख कवि अपनी कल्पना-मंजूषा खोल कर रख देता है तथा उपमित वस्तु पर कतिपय कल्पना के रत्न अपने आप को न्योछावर कर देते हैं । कवि कुछ उपमानों की एक माला गूँथ देता है, जिनके संयोग से प्रस्तुत का स्वरूप निखर उठता है । प्रातःकालीन तेजपुंज ऐसा प्रतीत होता है मानो कमल और चक्रवाक का अरुण अनुराग हो । वही सूर्य क्षणमात्र मे दूसरे रूप में परिवर्तित दिखाई देता है । कवि समझता है मानो एक मंगल-कलश सिंदूर वर्ण से आपूरित हो उठा है । एक तीसरे क्षण प्रभाकर की वही अरुणिमा मणिकांति-सयुक्त शक्रछत्र के सदृश प्रतिभासित होती है । इस प्रकार की सतोगुण एवं रजोगुणमयी कल्पना एक अन्य क्षण मे तमोगुणी रूप धारण कर लेती है तथा सूर्य के उग्र एवं प्रचण्ड रूप की भावना कवि के मानस मे उदित होती है । इस भावना की पूर्णाभिव्यक्ति निश्चय ही एक ऐसे उपमान की अपेक्षा रखती थी जिसके द्वारा सूर्य की प्रचण्डता एवं करालता व्यंजित होती। ऐसी स्थिति में कवि 'कापालिक के करों के रक्तरंजित कपाल' से अधिक उपयुक्त कौन सा उपमान दे सकता था ? विष्णु की वैष्णवी, इन्द्र की राजसी एवं शक्ति की तामसी भावनाओ का एकत्रीकरण करता हुआ कवि इन सभी कल्पनाओं का पर्यवसान अंतिम पंक्ति में कर देता है, जिसमें सूर्य और कुछ नहीं केवल दिशा-कामिनी

के मस्तक पर सुशोभित माणिक के सदृश प्रतीत होता है। इस शृंगारी भावना में केशव अपने सिद्धान्त के अनुसार सभी भावनाओं की अंतिम परिणति उपस्थित कर देते हैं। इस प्रकार यहाँ कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा के सहारे वर्णनीय वस्तु का एक अलंकृत एवं चमत्कारक स्वरूप प्रस्तुत किया है। संदेह, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार कल्पनामूलक हुआ करते हैं और कल्पना का सचमुच बड़ा ही सुन्दर उत्कर्ष उक्त उदाहरण में देखने को मिलता है। विपरीत कल्पनाओं को एक ही उपमेय पर एकत्र करते हुए कवि ने अलंकारिक वर्णन शैली का एक सुन्दर स्वरूप उपस्थित किया है। कवि के इस अलंकरण कौशल की जितनी ही प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

केशवदास ने जहाँ रूपक बाँधे हैं वहाँ भावना किसी भी प्रकार अवरुद्ध नहीं होने पाई है। सूर्योदय-वर्णन के ही प्रसंग में देखिये—

चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्हों मुकि झहराय, सकल तारिका कुसुम बिन॥

कवि की अभिव्यक्ति सुन्दर, रूपक सुगठित और सूझ सराहनीय बन पड़ी है। यहाँ बानर का रूपक छन्द को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान कर रहा है, साथ ही प्रकृति का गत्यात्मक स्वरूप भी हृत्पटल पर अंकित हो जाता है। पर यह सब है अलंकार योजना की ही लपेट में, यह न भूलना चाहिए।

प्रकृति तथा ऋतु के वर्णन में केशव ने अपनी अलंकार-शक्ति का पूरा परिचय दिया है। श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग में तो वे असाधारण पटुता रखते थे। ऐसे वर्णनों में वे जान-बूझ कर प्रवृत्त हुए हैं जहाँ शब्द चातुर्य एवं कल्पना वैभव के प्रदर्शन के लिए कुछ भी अवसर रहा है। श्लिष्ट शब्दावली के तो वे अधिकारी प्रयोक्ता थे। उनका वर्षा वर्णन श्लेष की योजना से चमत्कृत हो उठा है—

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है॥

केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है॥

किन्तु जैसा पहले कहा गया है, वस्तु का स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं हो पाता; कवि का अलंकरण कौशल ही प्रधान हो जाता है। इस उदाहरण में कवि की काव्य-शक्ति, उसका भाषाधिकार आदि ही हमे प्रभावित करता है, कोई प्रकृति की छटा नही। यहाँ एक ओर कालिका और दूसरी ओर वर्षा अपना-अपना रूप झलकाती हुई मिलती हैं। इस प्रकार के वर्णनों मे प्रकृति की अपेक्षा कवि की कल्पना और कला का सौन्दर्य ही विशेष रूप से देखने योग्य हुआ है। केशव कृत वर्षा वर्णन मे कुछ चित्रात्मकता भी मिलती है—

मद मंद धुनि सों घन गाजैं। तूर तार जनु आवझ बाजै।
ठौर ठौर चपला चमकै यों। इन्द्रलोक तिय नाचति है ज्यों।
सोहै घनश्यामल घोर घने। मोहैं तिनमें बकपांति भनै।
सखावलि पी बहुधा जलस्यों। मानो तिनको उगिलै बकस्यों।
शोभा अति शक्रशरासन में। नाना दुति दीसति है घन में।
रत्नावलि सी दिविद्वार भनो। वर्षागम बाँधिय देव मनो।

इसी प्रकार पंचवटी तथा भरद्वाज आश्रम के वर्णन अलंकृत शैली मे हुए हैं जिनमे केशवदास ने बाण के वर्णनों का अनुकरण किया है। अनेक कल्पनाएँ भी उन्होंने ज्यो की त्यो ले ली हैं, किन्तु बाण की सी रूप योजना और वातावरण योजना केशव मे नही मिलती। कोरी अलंकरण की प्रवृत्ति के कारण हमे वैचित्र्य ही वैचित्र्य देखने को मिलता है। भरद्वाज आश्रम का वर्णन देखिये—

सुवा ही जहाँ देखिये वक्रगामी। चलै पिप्पलै तिक्ष बुध्यैसभागी।
कँपै श्रीफलै पत्र हैं यत्र नीके। सुरामानुरागी सबै राम ही के।
जहाँ वारिदै बृन्द बाजानि साजै। मयूरै जहाँ नृत्यकारी बिराजै।

इसे देखकर मन मे कोई भाव नहीं आता, कोई चित्र नही अंकित हो पाता, केवल परिसंख्या की योजना ही हाथ लगती है। यह अलकारिक प्रवृत्ति केशव में यहाँ तक बढी हुई मिलती है कि वे बिना वस्तु के रूप को सामने रखे ही अलकार योजना करते चले जाते हैं। दण्डक वन का वर्णन इसी प्रकार है—

लक्ष्मण—बेर भयानक सी अति लगे। अर्क समूह जहाँ जगमगै।
नैनन को बहुरूपन ग्रसै। श्री हरि की जनु मूरति लसै।

राम—पाण्डव की प्रतिमा सम देखो। अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सुन्दर की तिलकावलि रूरी।

यहाँ काल-दोष का ध्यान न रखते हुए केवल नाम साम्य के ही कारण अर्जुन की उपमा ककुभ और भीम की उपमा अम्लवेत नामक वृक्ष से दी गई है। प्रकृति का स्वरूप तो बहुत दूर छोड़ आए हैं। यह अलंकृत वर्णन शैली उनके अधिकाश प्रकृति वर्णनो मे मिलती है। प्रकृति के स्वच्छन्द को वे इस कारण नहीं उपस्थित कर पाते क्योंकि वे अलंकारिक कौशल के सामने प्रकृति के रूप को कोई महत्व नहीं देते। इसी कारण कथानक के अनुकूल वातावरण आदि का भी विधान नहीं हो सका है, कल्पना की उछाल अवश्य जी भर देखने को मिलती है।

वस्तु परिगणन—कवि परंपरा के अनुगामी होने के कारण केशव ने कहीं कहीं ऐसे प्राकृतिक चित्र भी उपस्थित किए हैं जिनमे वस्तु परिगणन शैली का आधार लिया गया है। ऐसे प्रकृति वर्णनो में विशेष रमणीयता नहीं आ सकी हैं। प्रकृति चित्रण करते हुए वस्तुओं का नाम मात्र गिना चलने की रीति संस्कृत साहित्य में भी रही है। अपने यहाँ जायसी आदि भी ऐसा ही करते पाए जाते हैं उदाहरण के लिये देखिये—

फरे आँब अति सघन सोहाये। और जस फरे अधिक सिर नाये॥
कटहर डार पींड सन पाके। बड़हर सो अनूप अति ताके॥
खिरनी पाकि खाँड अस मीठी। जामुन पाकि भँवर अस डीठी॥
नरियर फरे फरी फरहरी। फुरै जानु इंद्रासन पुरी॥

पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू । मधुजस मीठ पुहुप जस बासू ।।
और खजहजा अनवन नाऊँ । देखा सब राउन अमराऊँ ।।
लाग सबै जस अमृत साखा । रहै लोभाइ सोइ जो चाखा ।।
लवंग सोपारी जायफल, सब फर फरे अपूर ।
आस पास घन इमली, औ घन तार खजूर ।।

यहाँ कवि ने सभी संभव वृक्षों के नाम भर गिनाए हैं, उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं कि ये सभी वृक्ष किसी एक स्थान पर किसी एक काल में हो भी सकते हैं अथवा नहीं । इसी रीति का पालन करते हुए केशवदास ने भी कुछ छन्द लिखे पर ऐसे छन्दों की संख्या बहुत कम ही है । विश्वामित्र मुनि के आश्रम का वर्णन करते हुए उल्लेखात्मक रीति से केशव वर्णन कर चलते हैं—

तरु तालीस ताल तमाल हिताल मनोहर ।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल केर नारियर ।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै ।
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै ।
शुक राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन ।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन ।।

इसमें भी देश काल की सीमा का ध्यान न रखते हुए केवल वृक्षों और पक्षियों के नाम गिनाए गए हैं । संस्कृत में भी इसी भाव का एक श्लोक मिलता है जिसे देखकर लगता है कि केशव ने संभवतः उसी को हिन्दी में अवतरित कर दिया है। संस्कृत का श्लोक इस प्रकार है—

ताल तिलक तमाल हिन्ताल बकुल बहुलै :
एला लता कुलित नारिकेलि कलापै :
लोल लोध्र ववली लवंग पल्लवै :
उल्लसित चूत रेणु पटलै अलिकुल झंकारै :
उन्मद कोकिल कुल कलाप कोलाहलाभि : इत्यादि ।

केशव ने इसी प्रकार पंचवटी वर्णन मे भी वन के वृक्षो, फूलों और पत्तियों का उल्लेख कर दिया है—

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल कुल कलरव बोले।
अति मत्त मयूरी, पियरस पूरी, वनवन प्रति नाचत डोले।
सारी शुक पंडित, गुण गण मंडित, भावनि में अरथ बखाने।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरित मधु सब जाने।

ये वर्णन रूढ़िगत हैं, जिनमे परम्परागत वस्तुओं को छोड़ कवि का ध्यान नई वस्तुओं की ओर गया ही नहीं है। केशव कृत कृत्रिम पर्वत और सरिता के वर्णन भी इसी कोटि मे आते हैं।

वस्तु परिगणन शैली में किये गए प्रकृति वर्णनों मे परंपरा पालन के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वस्तुओं की गिनती गिना देने से काव्यत्व नहीं आ सकता, फिर जिन वृक्षो और वनस्पतियों का उल्लेख काव्य मे किया जाता है, उनके स्थानगत औचित्य का भी ध्यान रखना चाहिए। वाल्मीकि, कालिदास आदि ने जहाँ प्रकृति का वर्णन किया है; वहाँ स्थानगत विशेषताओं का विवरण अवश्य दिया है; हिमालय का वर्णन करते हुए वे भूर्ज और देवदारु तथा दक्षिणी प्रदेशों का चित्र उरेहते समय एला, लवंग, नारिकेल आदि वृक्षों का उल्लेख करना नही भूले हैं। औचित्य की इतनी आशा तो कवि से की ही जाती है। केवल लीक पीटने ही के कारण केशव के वर्णनों में अनेक स्थलों पर यह दोष आ गया है। इसी कारण अनेक आलोचकों ने लिखा भी है कि केशव प्रकृति के कमनीय रूप से अपना रागात्मक संबंध नही स्थापित कर पाए थे। निस्संदेह उन्हें प्रकृति चित्रण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए था कि एला, लवग, पुंगी-फल अयोध्या और मिथिला के बीच के जंगलो में नहीं होते। रूढ़ियों का पालन एक सीमा तक ही उचित है।

महान विभूतियों की अनुचरी रूप में प्रकृति परमात्मा की आज्ञानुवर्तिनी शक्ति है। मनुष्य रूप में अवतरित होने पर भी राम में ईश्वरीय गुणों की विशेष प्रतिष्ठा थी। प्रकृति उनकी इच्छानुगामिनी के रूप में कवियों द्वारा अंकित हुई है।

तुलसी ने लिखा है कि *'माँगे वारिधि देहि जल रामचन्द्र के राज'* । इतना-ही नहीं प्रकृति उन महान आत्माओं की भी वशवर्तिनी है जो अपने तप और त्याग द्वारा महान हो गए हैं, अथवा जिस पर भगवान का विशेष अनुग्रह हो गया है—

'किये जाँहि छाया जलद भरत जहाँ तहँ जाहि ।'

अनेक स्थलों पर कवियों ने ऐसा वर्णन किया है कि प्रकृति अवतारी पुरुषों के लिए नम्र और अनुकूल हो जाया करती है तथा महान आत्माओं के संसर्ग से उसका वैषम्य तिरोहित हो जाया करता है। केशव द्वारा प्रस्तुत एक इसी प्रकार का चित्र देखिये जिसमें भगवान राम के संसर्ग से सूखे जलाशय भर जाते हैं, वन की वल्लरियाँ और विटप-वृन्द हरे हो उठते हैं तथा विहग समूह कल्लोल कर उठता है। देखिये—

तड़ाग नीरहीन ते सनीर होत केशोदास,
पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंडहीं ।
तमाल वल्लरी समेत सूखि-सूखि कै रहै, ते
बाग फूलि-फूलि कै समूल सूल खंड हीं ॥
चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत,
हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं ।
जहीं-जहीं विराम लेत राम जू तहीं तहीं,
अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़ैं ॥

भगवान् के पदार्पण से प्रकृति अपनी म्लानता का परित्याग कर प्रफुल्ल-वदन हो उठती है। यह प्रकृति श्रीराम के प्रभाव से केवल स्वरूप परिवर्तन ही नहीं करती वरन् अवसर पड़ने पर स्वभाव परिवर्तन भी कर देती है—

बाम को राम समीप महाबल । सीतहिं लागत है अति शीतल ॥
ज्यों घन संयुत दामिनी के तन । होत हैं पूषन के कर भूषन ॥
मारग की रज तापित है अति । केशव सीतहिं सीतल लागति ॥
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि । दै जु चलै तेहि ते सुखदायनि ॥

मार्ग मे राम के चरण जिन-जिन स्थलों पर पडते हैं, ठीक उन्ही-उन्हीं स्थलो पर सीता अपने चरणों का आरोप करती चलती हैं। फलतः सीता को मार्ग की तपती हुई धूल भी शीतल प्रतीत होती है। यह सब राम के संसर्ग का ही प्रभाव है।

एकाध स्थलो पर प्रकृति का बडा ही कमनीय और रमणीय वातावरण कवि ने प्रस्तुत किया है। राम और सीता वन में भी सुखपूर्वक अपने दिन बिताते हैं। जब कभी सीता अपनी वीणा लेकर बजाती हैं, उसकी मधुर-ध्वनि से मुग्ध हो कितने ही पशु पक्षी घिर आते हैं। भगवान् राम उनके प्रति बडा स्नेह रखते हैं और कभी-कभी फूलो के आभूषण भी गूँथ कर उन्हें पहना दिया करते है—

जब जब धरि बीना, प्रकट प्रवीना, बहु गुन लीना, सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै, दुखनि भजावै, विविध बजावै, गुन गीता॥
तजि मति संसारी, बिपिन बिहारी, सुख दुख कारी, घिरि आवै।
तब तब जगभूषण, रिपुकुल दूषण, सबको भूषण पहिरावै॥
कबरी कुसुमाजि सिखीन दई। गजकुंभनि हारनि शोभ मई।
मुकुता सुक सारिक नाक रचे। कटि केहरि किंकिणि शोभ रचे।
दुलरी कल कोकिल कंठ बनी। मृग खंजन अंजन शोभ घनी।
नृप हंसनि नूपुर शोभ भरी। कल हंसनि कंठनि कंठ सिरी।

ये सब उपहार हैं जिन्हें राम और सीता वन्य जंतुओ के बीच वितरित करते हैं। वन का निवास कितना मोदप्रद है और कितना आनददायक है, ऐसे ही प्राकृतिक चित्रों द्वारा अवगत होता है। ऐसी ही महान् विभूतियों के साक्षात्कार से प्रकृति-निवासिनी वैषम्य-भावना भी तिरोहित हो जाती है तथा भक्षक और भक्ष्य जीव एक ही स्थान ही विरमते दृष्टिगत होते हैं। मुनिवर भरद्वाज के आश्रम की शाति का वर्णन करते हुए अतिशयोक्ति पूर्ण पदावली मे केशव ऐसी ही परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हैं—

केशोदास मृगज बछेरू चोखै बाघनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।

सिंहन की सटा ऐंचे कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है ॥
फणी के फणन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
वानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसिनि,
शिव को समाज कैधों ऋषि को सदन है ॥

उद्दीपन रूप में—उद्दीपन विभाव के रूप मे प्रकृति के चित्रण सुन्दर वन पड़े हैं। प्रकृति अपने अन्तर्मन की भावनाओं से ओत-प्रोत हो सामने कभी हर्ष से इठलाती और कभी विषाद से विकल, कभी आनंद से नाचती और कभी शोक से विह्वल दीख पड़ती है। आत्मगत भावनाओं से अनुरंजित हो प्रकृति भी आत्मस्वरूप हो जाती है। यही प्रकृति कभी तो मनुष्य के विभिन्न मनोवेगों को उत्तेजित करती है और उन भावों को उद्दीप्त करती है जो मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। प्रकृति कभी मानव मन को अनुराग के रंग में बोर देती है तो कभी विरह की वेदना से पीड़ित; कभी हर्ष पुलक से रोमाचित तो कभी निर्वेद की शाति में तन्मय। प्रकृति और मानव सम्बन्धित इस प्रकार की विचारधारा भारतीय मस्तिष्क की प्रकृति के बहुत ही अनुकूल रही है। अतः इस रूप में प्रकृति-चित्रण हिन्दी साहित्य में सर्वत्र विद्यमान है। केशव के ही समकालीन महाकवियों, सूर और तुलसी ने विरह-पीड़ित प्राणियों को कभी-कभी जड प्रकृति तक से बातें करते हुए दिखाया है—

मधुवन तुम कत रहत हरे ?
विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ?

(सूर)

श्याम विरहिणी गोपिका की आँखों को वृक्षों की हरियाली नहीं भा रही इसी से वह उनसे ऐसा कह कर सहानुभूति की याचना कर रही है। इसी प्रकार तुलसी के राम भी वन-वन मे सीता की खोज में विकल हैं, वे एक अजीब-सी बेसुधी मे पक्षियों तक से प्रश्न करते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम देखी सीता मृग नैनी ।।

केशव के परवर्ती काल के कवियो, सेनापति, मतिराम, नागरीदास आदि मे भी इसी प्रकार के प्रकृति चित्रण की परंपरा चलती रही। केशव की रामचन्द्रिका में तो उद्दीपन रूप में प्रकृति के बडे सुन्दर-सुन्दर वर्णन आए हैं। सीता का अपहरण हो जाता है और राम विरह में व्याकुल होकर वन-राजियों के बीच सीता का पता ढूँढ़ते फिरते हैं। मार्ग मे यदि एक चकवा-चकई के जोड़े को देखते हैं तो वे उनसे सीता का समाचार पूछते हैं और चकोर से सहायता देने का आग्रह करते हैं। विरह का यह आवेग धीरे-धीरे बढता ही जाता है। अभी तक तो राम मनुष्येतर प्राणिवर्ग से ही इस प्रकार के प्रश्न करते हैं, परन्तु अब वे प्राणहीन पदार्थों, वृक्षों तथा वनस्पतियो तक से प्रश्न करते दृष्टिगत होते हैं—

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरि कै,
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरि कै,
सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करि कै ।।

इस प्रकार के प्रकृति चित्रणों में अलंकारवादी केशव काव्य-कौशल के साथ-साथ यथाशक्ति रसात्मकता का भी काव्य में समावेश कर गए हैं। अब प्रकृति के ही संयोग से विरह पीडित राम की तनिक वह उक्ति देखिये जिसमे अनुभूति का और भी प्राधान्य मिलता है—

हिमांशु सूर सी लगै सो बात बज्र सी वहै।
दिशा जगैं कृसानु ज्यों विलेप अंग को दहै ।।
बिसेस कालराति सों कराल राति मानिये।
बियोग सीय को न काल लोकहार जानिये ।।

यहाँ 'अपह्नुति' के आवरण में वियोगानुभूति का प्रकाशन हुआ है। वही सीता जिसके सौन्दर्य निर्माण में तुलसीदास ने इस प्रकार की उत्प्रेक्षा की है—

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रकट देखाई ।।

इस प्रकार बड़ी ही सुन्दरता और सहृदयता के साथ केशव ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं के आधार पर अंकित करते हुए उद्दीपन शैली का आश्रय लिया है।

अप्रस्तुत रूप में प्रकृति का उपयोग—प्रकृति का प्रयोग सहृदय कवियों ने अपने काव्यों मे उपमाओं के रूप मे बराबर किया है। आँधी, तूफान, बादल समुद्र, वन, पर्वत, नदी, नाले, पशु, पक्षी, फूल, पत्ते सभी कुछ हमारे जीवन से अनंत काल से संबद्ध रहे हैं। फलतः ये चीजें हमारी दृष्टि से कभी भी ओझल नहीं हो सकी हैं। बातचीत के समय अथवा साहित्य-रचना करते हुए जानबूझ कर या अनजान में हमने प्रकृति के इस अपार क्षेत्र से मनचाही उपमाएँ ढूँढ़ी हैं और उनका प्रयोग किया है। किसी वस्तु का वर्णन करते समय सादृश्य-स्थापन के लिए प्रकृति ने हमे समय समय पर सहायता दी है। इस प्रकार उपमान या अप्रस्तुत रूप मे आई हुई प्रकृति यद्यपि प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत विवेचन की वस्तु नहीं, तथापि इस रूप मे प्रकृति का उपयोग इतनी प्रचुरता से हुआ है कि प्रकृति चित्रण की चर्चा करते समय हम उसे सहसा भुला नहीं सकते।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल मे अप्रस्तुत अथवा उपमान रूप मे लाई गई प्रकृति के दो रूप मिलते हैं। साहित्यिक परंपराओं से जो कवि पूर्णरूप से मुक्त हैं उन्होंने प्रकृति से हमे नए-नए उपमान दिये हैं। जो कवि साहित्यिक परंपरा से बँधे रहे हैं उन्होंने प्रचलित उपमानों की योजना स्वानुभूति के आधार पर की है। रीतिकाल मे आकर हम यह देखते हैं कि अप्रस्तुत रूप मे प्रकृति का उपयोग प्रायः रूढ़ि के ही आधार पर हुआ है। कुशल और प्रतिभाशाली कवियों ने अवश्य कुछ नए और सुन्दर प्रयोग किये हैं किन्तु सामान्यतया प्रकृति का रूप इनकी आँखो से ओझल होता गया है। प्रकृति के विविध स्वरूप इनके सामने केवल नाम रूप मे रह गए हैं, उनका मूर्त और सजीव रूप इनके ध्यान मे नहीं रहा है। रीतिकाल में ही एक प्रकार के भी कवि रहे हैं जिनकी दृष्टि अलंकारों की ओर उतनी न थी जितनी रसात्मक काव्य रचना की ओर। ये कवि हाव-भाव के चित्रण में विशेष रूप से लीन रहने के कारण अपनी उपमान योजना मे प्रकृति को कोई नया सौष्ठव या विशिष्टता नहीं दे पाये।

केशव पहली कोटि के कवियों में आते हैं क्योंकि इनका उद्देश्य उक्ति-वैचित्र्य का प्रदर्शन और कल्पना-कौशल से चमत्कार की सृष्टि ही रहा है, कोई सादृश्य द्वारा वस्तु बोध कराना नहीं। इसी उद्देश्य भेद के कारण केशव के काव्य में कवि का प्रकृति से रागात्मक संबंध नहीं मिलता और उसको ढूँढने की चेष्टा करना भी व्यर्थ है। केशवदास ने स्थान-स्थान पर सौन्दर्य की छटा प्रदर्शित करने के लिये प्राकृतिक उपमानों का आश्रय लिया है। वर्णनीय विषयों के लिए अप्रस्तुत रूप में प्राकृतिक वस्तुओं या व्यापारों को लाकर उन्होंने जहाँ एक ओर वर्ण्य विषय को सुन्दर बनाया है, वहीं अपने अलंकरण-कौशल का भी प्रदर्शन किया है। वे योग्य और प्रतिभाशाली कवि थे अतः चमत्कार के साथ साथ यत्र-तत्र नवीन और मौलिक उपमाएँ भी दे गए हैं। अनेक प्राकृतिक रूपों की अप्रस्तुत रूप में प्रतिष्ठा शुद्ध सादृश्य की दृष्टि से भी बड़ी उपयुक्त और मनोहर बन पड़ी है यथा—

बनि चारि बरात चहूँ दिसि आई। नृप चारि चमू अगवान पठाई॥
जनु सागर को सरिता पगु धारी। तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी॥

चारों भाइयों (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) की बरात जनकपुरी में पहुँचती है और सारी जनकपुरी उनका स्वागत करती है। इस शुभ दृश्य को दिखाने के लिए सागर और सरिता का स्नेहपूर्ण मिलन बड़ी ही सच्ची और स्वाभाविक उत्प्रेक्षा कही जायगी। यह तो प्रकृति का नित्य व्यापार है। इसी प्रकार कहीं-कहीं निजी अनुभव के सहारे केशव ने सुन्दर और स्वाभाविक उपमाएँ प्रकृति से ली हैं। वन में राम से भेंटने के लिए, देखिए माताएँ कितनी आकुलता से दौड़ती हैं—

मातु सबै मिलिबे कहँ आईं। ज्यों सुत को सुरभी सुलवाईं।

जैसे घास चरकर आती हुई गाएँ अपने बछड़ों से मिलने को दौड़ें। इस उपमा में स्नेह का सच्चा स्वरूप उतर आया है। प्रकृति से ग्रहण किया गया यह अप्रस्तुत भाव को उत्कर्ष देने वाला सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार उदास और दुखी सीता अशोक वाटिका में बैठी हुई ऐसी लगती है जैसे जल से विलग होकर कमलिनी मुरझा जाती है। यह उत्प्रेक्षा भी बड़ी ही सहज और चित्तस्पर्शी है। किन्तु इस

प्रकार के प्राकृतिक अप्रस्तुतों की योजना मे केशव का प्रकृत स्वरूप हमें देखने को नहीं मिल सकता। वे प्राकृतिक अप्रस्तुतो की नियोजना मे अपना चरम उत्कर्ष वहीं दिखा पाते हैं जहाँ चमत्कार का उन्होंने सहारा लिया है। रावण के हाथ पड़ी हुई अशोक वाटिका में वन्दिनी सीता के लिए लाए गए उपमानों को तनिक देखिये —

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की,
शिखा कै धूमयोनि मध्यरेखा सुधाधाम की
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं,
शवर छँड़ाइ लई कामिनी कै काम की ॥

सीता रावण के वश में ऐसी पड़ी है जैसे धूम समूह में अग्नि शिखा हो या बादल में चन्द्रकला हो अथवा बड़े भारी बवंडर मे कोई सुन्दर चित्र हो। ये सभी सन्देहमूलक उपमाएँ चमत्कार पर आश्रित होते हुए भी नई और मौलिक हैं, विशेष रूप से रावण को बगरूरे या बवंडर के समान कहना बहुत ही सुन्दर हुआ है। अब रूप वर्णन के कुछ प्रसंग देखिये—

(क) *मेघ, मंदाकिनी, चारु सौदामिनी, रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।*
भूरि भागीरथी, भारती, हंसजा अंश के हैं मनो, भोग भारेभनो।

(ख) *नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरै।*
मेघन की दुति मानहु दामिनी देह धरै ॥
एकन के तन सूक्ष्म सारि जराय जरी।
सूर करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥

यहाँ पहले उदाहरण में बतलाया गया है कि मार्ग मे जाते हुए राम, सीता और लक्ष्मण ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो मेघ, आकाशगंगा और बिजली ही देह धारण किए हुए जा रहे हों अथवा मानों यमुना, गंगा और सरस्वती के अंशों ने देह धारण कर लिया हो। दूसरे उदाहरण में अवधपुरी की अटारियो पर चढ़ी हुई स्त्रियों का वर्णन है—'कोई स्त्री नीलाम्बर धारण किए हुए मन मोहती है, मानों बिजली ही ने मेघकान्ति को अपने शरीर पर धारण किया है। किसी स्त्री के तन

पर जरी की बारीक साडी है, वह ऐसी शोभा देती है मानो कमलिनी ने सूर्य-किरण-समूह को शरीर पर धारण किया हो।' * रूप और आकार के वर्णन में इस प्रकार शुद्ध चमत्कार की प्रेरणा से प्राकृतिक उपमान गृहीत हुए हैं जिनके रूप का साक्षात् पाठक को नहीं हो पाता, हाँ कवि की कल्पना की ऊँचाई अवश्य मनोगत होती है। और भी देखिये राम के मुख की शोभा का कवि ने रूपक और उत्प्रेक्षा के सहारे वर्णन किया है—

अति वदन सोभ सरसी सुरग। तहँ कमल नयन नासा तरंग॥
जन युवति चित्त विभ्रम विलास। तहँ भ्रमर भँवत रस रूप आस॥

यहाँ मुख के लिए सरोवर को उपमान बनाया गया है जिसमें नेत्र कमल हैं, उठी हुई नासिका लहर है जिन पर युवतियों के चित्त रूपी भौरे मँडराते रहते हैं। यहाँ रूप वर्णन मे प्रकृति से ली गई उपमाएँ रूपक और उत्प्रेक्षा रूप में अलंकारिक सौन्दर्य की दृष्टि से नियोजित हुई हैं। इन अप्रस्तुत योजनाओं में प्रकृति इसलिए नही नियोजित हुई है कि उसके द्वारा प्रस्तुत अधिक स्पष्ट या सुन्दर रूप मे हृदयगत हो सके वरन् इसलिए कि कवि की वर्णनशैली चमत्कार-पूर्ण, कल्पना रुयुक्त और उत्कृष्ट कही जाय। निस्सदेह यह प्रकृति का अच्छा या उचित उपयोग नही कहा जायगा और न ही यह कहा जा सकेगा कि कवि को प्रकृति से गहरा अनुराग है। प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग केशव ने इस कारण भी किया है कि वे संस्कृत साहित्य के एक अच्छे अध्येता थे और इस कारण संस्कृत काव्य की अप्रस्तुत योजना उन्होंने यथावत् ग्रहण करली। जहाँ कहीं उपमानों की नवीनता या प्राचीन उपमानो का नया प्रयोग है वह सब केशव की निजी प्रतिभा का परिणाम है। वे कुशल कवि थे इसलिए यह उनके लिए कोई बडी बात नही, लेकिन निष्कर्ष जो निकलता है वह यह कि प्रकृति से लिए गए अप्रस्तुतो का प्रयोग केशव ने परपरावश और प्रधानतः काल्पनिक चमत्कार की प्रेरणा से किया है। रूप और भावसाम्य परिस्थिति-चित्रण या वातावरण निर्माण उनकी दृष्टि मे प्रधान नहीं रहा है।

---

*लाला भगवानदीन—रामचन्द्रिका (पूर्वार्द्ध) पृ० १२६

अंत मे अप्रस्तुत रूप में लाए गए कतिपय प्रकृति रूपों के सफल और असफल उदाहरण देकर यह प्रसंग समाप्त किया जाता है। राम की वाहिनी के प्रस्थान का चित्र देखिए और साथ ही उसके लिए लाए गए उपमानों पर भी ध्यान दीजिए—

कहै केशोदास तुम सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरी जबहिं सेन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आस पास,
दिस दिस बरषा ज्यों बलनि बलडति है॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गज,
राज मृग मृगराज राजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आय जात,
पुरइन को सो पात पुहुमी हिलति है॥

यहाँ राम के सेना की शक्ति और पराक्रम की व्यंजना मे कवि ने प्रकृति से लाकर केवल दो ही उपमान जुटाए हैं। सेना के प्रस्थान से धूल सारे नभ मडल मे छा जाती है तथा आकाश मे उछलते चलते वानर और रीछ मेघों की तरह जान पडते हैं। दूसरे सेना के चलने के भयंकर आघात से पाताल का पानी धरती के ऊपर आ जाता है और धरती पुरइन के पत्ते की तरह हिलने लगती है। यहाँ प्रभाव की व्यजना बडी सुन्दर हुई हैं। इसी प्रकार सीता के रूप-सौन्दर्य की व्यजना मे नियोजित उपमानों का एक प्रयोग देखिये—

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एकै कहैं चन्द्र सम, आनंद को कंद री।
होय जो कमल तो रयनि मै न सकुचै री,
चन्द जो तो बासर न होनी दुति मंद री॥
बासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र,
मुख बासर हू रजनि विराजै जगवंद री।
देखे मुख भावे अनदेखेई कमल चंद्र,
तातें मुख मुखै सखी कमलै न चंदरी॥

यहाँ कवि का अलंकार-कौशल अद्भुत बन पड़ा है। पहले कवि ने उपमेय (सीता का मुख) में उपमान (कमल और चन्द्रमा) से अधिक गुणों का होना व्यतिरेक अलंकार द्वारा बतलाया है। यह कथन भी तार्किक प्रणाली से बड़ा ही सुन्दर उतरा है—

होय जो कमल तो रयनि मैं न सकुचै री,
चन्द जो तो बासर न होती दुति मंद री।

इसके बाद कवि युक्तियुक्त रीति से निष्कर्ष निकालता है और उसे अनन्वय अलंकार द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत करता है। सौन्दर्य के प्रसिद्ध उपमान कमल और चन्द्रमा विशिष्ट कारणों से सीता के मुख सौन्दर्य के समकक्ष नहीं ठहर पाते। अतः सीता का मुख अपनी उपमा आप है। यह मुख-वर्णन इसलिए अच्छा कहा जायगा कि यहाँ कवि ने परंपरागत उपमानों की योजना नए ढंग से की है। साथ ही साथ उक्ति वैचित्र्य भी है जिसके कारण वर्णन शैली में सौन्दर्य आ गया है। किन्तु जहाँ बिना सुन्दर साम्य स्थापना का विचार किए हुए कवि ने प्राकृतिक अप्रस्तुतों का उपयोग किया है वहाँ काव्य और उसका विषय दोनों कुछ ऊट-पटाँग हो गया है। उदाहरण के लिए पंचवटी का वर्णन ले लीजिए जिसमें केवल नाम साम्य से किसी पेड़ को अर्जुन और किसी को भीम ठहरा दिया गया है। इसी प्रकार का एक उदाहरण और दिया जा रहा है जिसमें हनुमान जी सीता से राम की विरहावस्था का वर्णन करते हैं—

दीरघ दरीन बसैं केशोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बन करी ज्यों कँपत हैं।
बासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत हैं॥
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरन जवासो ज्यों तपत हैं।
भौंर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यों नाम राम तेरोई जपत हैं॥

उपमानों की नवीनता के फेर में केशव ने राम को सिंह, हाथी, उल्लू, चकवा, सर्प, जवास, भौरा, योगी, शाक्त आदि जाने क्या-क्या बना डाला है। इनमें से अनेक उपमान प्रकृति से ही लिए गए हैं और कारणवश ही अप्रस्तुत रूप में नियोजित हुए हैं फिर भी केशव का ध्यान इस ओर बिल्कुल ही नहीं गया है कि उपमेय कौन व्यक्ति है और उसके लिए लाए गए उपमानों का पाठक पर क्या प्रभाव पड़ेगा। वे तो उपमान झोंकने की धुन में मस्त थे। कदाचित् इन्हीं कारणों से कहा गया है कि केशव का प्रकृति निरीक्षण या तो था नहीं या बहुत कम। यदि उन्होंने प्रकृति को देखा भी था तो उससे वे अपना राग नहीं जोड़ पाए थे। उन्होंने प्रकृति का चित्र खींचा है और प्रचुर परिमाण में। पर यह सब एक परंपरा का निर्वाह मात्र करने के लिए। स्वानुभव और निजी निरीक्षण से उन्होंने शुद्ध प्रकृति के चित्र प्रस्तुत नहीं किये हैं।* वह आई है उनके काव्य में अलंकारों की क्रीड़ा भूमि बन कर।

---

*यदि किए भी हैं तो बहुत कम, यथा—

चडकर कलिक बलित बल सदागति कंद मूल फूल फल दलनि को नास है।
कीच बीच मीन बचैं ब्याल बिल कोल कुल द्विरद दरीन दिनकंत को बिलास है॥
थिर चर जीवन हरन बन-बन प्रति केशोदास मृग शिर श्रवन निवास है।
धावत बजित धनु शोभत न पाणि शर समर समूह कीधौं ग्रीषम प्रकास है॥
(कवि प्रिया)

यहाँ ग्रीष्म के ताप और प्रकृति की विकलता का यथावत् वर्णन करने का थोड़ा-सा प्रयास है पर अलंकारों से यहाँ भी छुट्टी नहीं मिली है।

रामचन्द्रिका में संवाद योजना

विक्रम की १७वीं शताब्दी मे हिंदी साहित्य क्षेत्र ने दो महान् प्रबंध काव्यों का सृजन हुआ—रामचरितमानस और रामचन्द्रिका । इन्हें पढ़ते समय यह कदापि न भूलना चाहिए कि इनकी रचना के दृष्टिकोण में अंतर है और इसी कारण दोनों रचनाओं मे भी बड़ा भारी अंतर मिलता है। एक का प्रणेता राम का परम भक्त तो दूसरे का रचयिता काव्य-शास्त्र का पंडित, एक काव्य में रसात्मकता को महत्व देता है तो दूसरा अलंकारवादी। निश्चय ही दोनों ने राम कथा लिखी है पर एक ने अवधी में तो दूसरे ने ब्रज में, एक ने कथा के क्रमिक विकास तथा भावों के मार्मिक संवेदन के साथ भगवद्भक्ति से समस्त काव्य को ओत-प्रोत कर रखा है तो दूसरे ने छंदों के विस्तार मे, अलंकारिक चमत्कार के प्रदर्शन में और वर्णन विशदता मे अपनी समस्त काव्य-शक्ति नियोजित की है। इस प्रकार दोनों रचनाये अपने-अपने दृष्टिकोण से समान महत्व की अधिकारिणी हैं, परंतु ऐसा होते हुए भी हम एक को दूसरे का पूरक कह सकते हैं। एक के प्रकाश में हम दूसरे के महत्व का निर्धारण कर सकते हैं।

रामचंद्रिका के २७ वर्ष पूर्व मानस प्रणीत हो चुका था। आंशिक रूप में विश्वसनीय जन-श्रुति के आधार पर गोस्वामीजी और केशवदासजी का मिलन संपर्क माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में केशव का मानस ऐसे प्रबंध-ग्रन्थ से परिचय अवश्य हुआ होगा। तुलसी द्वारा प्रतिपादित, चित्रित अथवा वर्णित जिन रसात्मक भावों, विचारों एवं मार्मिक संवेदनाओं की आलोचक गण केशव के ग्रंथ मे पाने की आशा रखते हैं उन्हें तो वे सहज ही में छोड़ चुके थे तथा साहित्य-शास्त्र के ज्ञाता होने के नाते उन्होंने साहित्य की आवश्यकताओं को ध्यान मे रख नैषध और शिशुपाल वध के आदर्शों को सामने रखते हुए रामचंद्रिका मे अपने पाडित्य की पूर्णतम अभिव्यक्ति की है। श्रद्धेय हरिऔध जी ने ठीक ही कहा है कि 'रामचंद्रिका की गंभीरता इस योग्य नहीं कि उस पर कटाक्ष किया जावे।'

वर्णनात्मकता और संवादात्मकता को केशव ने रामचंद्रिका में विशेष महत्व दिया है।

रामचंद्रिका में संवादों को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए केशवदासजी ने अपने प्रबंध ग्रंथ में नाटकीय तत्वों का सन्निवेश कर दिया है। कथोपकथन के द्वारा केशव अपने ग्रंथ मे चरित्रों पर यथेष्ट प्रकाश डालने मे समर्थ हुए हैं। कथोपकथन के प्रकारो मे हम श्राव्य अथवा सर्वश्राव्य तो प्रायः प्रत्येक स्थान पर पाते हैं, पर स्थान-स्थान पर अश्राव्य अथवा आत्मगत कथोपकथन का रूप भी देखने मे आता है—यथा उस समय जब राम, रथ से उतर कर भरत का हाथ पकड़े हुए जमदग्नि के पास आते हैं—उनके अभिराम सौंदर्य को देख एक क्षण के लिए परशुराम मंत्र मुग्ध हो जाते हैं और अपने आप इन शब्दों मे भगवान राम के लावण्य की सराहना करने लगते हैं—

अमल सजल घनश्याम वपु केशोदास,
चंद्र हू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है।

वह स्थल जिस समय सीता स्वयंवर मे रावण यह निश्चय कर लेता है कि 'अब सीय लिये बिन हौं न टरौं' तथा राज समाज का सारा वातावरण रावण के त्रास से स्तब्ध सा हो रहा था उस समय कितनी नाटकीयता आ जाती है जब आकाशव्यापी आर्तनाद को सुन प्रतिज्ञाबद्ध रावण सभा भूमि को छोड़ अचानक ही चला जाता है—

आरत शब्द अकाश पुकार्यो,
रावण के वह कान पर्यो जब
छोड़ स्वयंवर जात भयो तब।

कथा मे केशव का मन उतना रमता नहीं दिखाई देता और इसी कारण केशव के चरित्रों की कोई स्पष्ट रूपरेखा हमारे सामने उस प्रकार नहीं खड़ी हो जाती जिस प्रकार से कि गोस्वामीजी उपस्थित करने मे सफल हुए हैं, परंतु केशव, संवादों के द्वारा ही चरित्रों की कतिपय विशिष्टताओं को हमारे सामने अमिट रूप

में ला सके हैं। रावण की गर्वोक्तियाँ देखिये जिनमें उसका व्यक्तित्व ही बोलता हुआ दिखाई देता है—

रावण—बज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो जेहि पर्बतारि,
जीत्यो है सुपर्ब सर्ब भाजे लै लै अंगना।
खंडित अखंड आशु कीन्हों हैं जलेश पाशु,
चंदन सी चन्द्रिका सों कीन्हीं चंद बंदना॥
दंडक में कीन्हों कालदंड हू का मान खंड,
माना कीन्हीं काल ही की काल खंड खंडना।
केशव कोदंड विषदड ऐसो खंडै अब,
मेरे भुजदडन की बड़ी है विडंबना॥

× × × ×

रावण—भौंर ज्यौं भँवत भूत बासुकी गणेशयुत,
मानो मकरंद बुंद माल गंगा जल की।
उड़त पराग पर, नाल सी विशाल बाहु,
कहा कहौं केशोदास शोभा पल पल की॥
आयुध सघन सर्व मंगला समेत शर्व,
पर्वत उठाय गति कीन्हीं है कमल की।
जानत सकल लोक लोकपाल दिगपाल,
जानत न वाण बात मेरे बाहुबल की॥

इन कथनो से रावण का प्रचंड पराक्रम और अद्भुत शौर्य प्रकट होता है। प्रथम कथन जो 'रावण बाण संवाद' के प्रसंग से उद्धृत किया गया है उस आवेग और उत्साह को ध्वनित करता है जो वीर-रस का स्थायीभाव है। इसी प्रकार उसकी ये उक्ति—

शम्भु कोदण्ड दैं। राजपुत्री कितै॥
टूक द्वै तीन कै। जाऊँ लंकाहि लै॥

उसकी असाधारण शक्ति सपन्नता की परिचायिका है। छंद की द्रुतगति तथा भाव से यह प्रतीत होता है कि रावण के लिए उस धनुष का तोड़ देना मानो एक साधारण सी बात है। इसी प्रकार इन पंक्तियों को भी देखिये जो उसकी राजसी मनोवृत्ति की परिचायिका हैं—

वाणी कही बान। कीन्ही न सो कान ॥
अद्यापि आनी न। रे वांहि कानी न ॥

इसी प्रकार रावण की दक्षता एवं उसकी कूटनीति स्वयंवर, सीता-संवाद, हनुमान और अंगद के संवादों द्वारा स्पष्टतया प्रकट होकर पाठक के हृदय में बस जाती है। जिस प्रकार रावण के चरित्र की ये विशेषतायें संवादों द्वारा स्पष्ट हुई हैं उसी प्रकार परशुराम की कठोरता, अंगद की चतुरता, राम की गंभीरता तथा लवकुश की वाक्पटुता आदि भी। "जिन-जिन स्थानों पर केशवदास जी ने पात्रों को स्वयं बोलने का अवसर दिया है वहाँ पात्रों में हम जीवन का पूर्ण स्पंदन पाते हैं।"—कृष्णशंकर शुक्ल।

कथानक में प्रवाह, रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता के दृष्टिकोण से भी केशव के संवादों का महत्व है। चरित्रगत विशेषताओं के उद्घाटन के अतिरिक्त उनके संवाद नाटकों का सा क्षिप्र-प्रवाह उपस्थित करने में समर्थ हुए हैं। विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखने वाले प्रसग संक्षेप मे ही व्यक्त हो गए हैं तथा कथा के विकास-क्रम में सरसता का संचार हो उठा है। संवादो के द्वारा केशव किसी भाव की व्यंजना कितने प्रभावपूर्ण रूप में कर पाते हैं यह दिखाने के लिए यहाँ पर केशव का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। रावण का प्रतिहार देवताओ से इस प्रकार कहता है—

प्रतिहार—*पढ़ौ विरंच मौन वेद जीव सोर छंडि रे।*
कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे ॥
दिनेश जाय दूरि वैठि नारदादि संग ही।
न वोलु चंद मंद बुद्धि, इंद्र की सभा नहीं ॥

रावण का प्रतिहार इस प्रकार से देववर्ग से व्यवहार करता है मानों वे उसके अनुचर हैं। इससे रावण का विभव एवं ऐश्वर्य बड़ी ही चतुराई से व्यंजित हुआ है।

केशव की रामचंद्रिका में संवादों की प्रचुरता है तथा प्रायः उन सभी स्थलों पर जहाँ संवादों के आधार पर ही कथावस्तु विकसित हुई है उनका काव्य साधारण धरातल से ऊँचे आ गया है। ऐसे ही स्थलों पर कथोपकथन के संयोजन ने केशव की अलंकरण-प्रवृत्ति के प्रकाशन के लिए विशेष अवकाश न मिल सकने के कारण उनकी भाषा प्रसादगुण से युक्त हो अपने प्रवाह और प्रभाव के साथ पाठक के सामने आई है।

यहाँ एक बात और कह देना आवश्यक है कि केशव के संवाद बहुत कुछ संस्कृत नाटकों पर आधारित हैं। साथ ही बहुत से स्वतंत्र और मौलिक भी हैं। फिर भी ऐसा नहीं हो पाया है कि अनुवाद के फेर में केशव ने भावों को किसी भी प्रकार अपकर्ष प्राप्त होने दिया हो। उन्होंने यथाशक्ति पात्रानुकूल, क्रोध, उत्साह आदि भावों की सुंदर व्यंजना की है तथा वाग्वैदग्ध्य के साथ व्यंग्य आदि को प्रधानता देकर काव्य में सजीवता ला दी है। केशव के अधिकांश संवाद छोटे हैं परन्तु कुछ विस्तृत भी बन पड़े हैं। परंतु संवादों में उनके जो रुचिरता है वह सर्वत्र मिलती है, चाहे वे छोटे हों चाहे बड़े।

रावण-बाण संवाद में केशव की एक बड़ी विशेषता है—छंदों का प्रयोग। यों तो छंदशास्त्र पर उनका पूरा अधिकार था फिर भी संवाद के अवसरों पर दंडक और सवैया ऐसे बड़े छंदों के साथ, तुरंगम, दोहा, तोमर, कमला, मधुरा, मधु, वधु, ऐसे-ऐसे छोटे और इतने विविध छंदों का बिना भावापकर्ष के निर्वाह कवि के तत्संबंधी आश्चर्यजनक अधिकार का ही परिचायक है। निम्न-लिखित तुरंगम छंद के कुछ ही शब्दों में कितनी तीखी चोट है, घात प्रतिघात है। देखिए।

बाण—बहुत बदन जाके। विविध वचन ताके॥
रावण—बहु भुज युत जोई। सबल कहिय सोई॥

रावण और बाण अपनी-अपनी भुजाओं की सामर्थ्य के दिग्दर्शन में लीन हैं तथा कितने शीघ्र ही वे एक दूसरे को मुँहतोड़ उत्तर-प्रत्युत्तर देते हैं, इसका सफल निर्वाह एक ही दोहे में देखिए—

रावण—*अति असार भुज भार ही बली हो हुगे बाण।*
बाण—*मम बाहुन को जगत में सुनु दसकंठ बिधान॥*

इसी प्रकार राम-परशुराम संवाद भी दर्शनीय है। जिस प्रकार वर्णनो में केशव की समता गोस्वामी जी नहीं कर पाये हैं, उसी प्रकार संवादों की योजना भी व्यावहारिकता अथवा औचित्य के विचार से गोस्वामी जी का लक्ष्मण-परशुराम और अंगद-रावण संवाद असफल ही कहा जायगा। लक्ष्मण की परशुराम के प्रति जैसी कटूक्तियाँ गोस्वामी जी ने कहलाई हैं वे एक राजपुत्र की मर्यादा का अवश्य ही अतिक्रमण कर जाती हैं। परंतु केशव ने परशुराम और राम के संवाद में 'राम की गंभीरता, वृद्धों के प्रति श्रद्धा, संकोच तथा उचित और संयत भाषा का प्रयोग इत्यादि सब बातें बड़े कौशल से रखी गई हैं। तुलसीदास जी के लक्ष्मण का प्रतिनिधित्व यहाँ पर भरत करते हैं परंतु भरत की स्वाभाविक गंभीरता के कारण परशुराम के महत्व की बहुत रक्षा हो गई है।' राम और परशुराम के संवाद में क्रोध का क्रमशः स्वाभाविक विकास दिखलाया गया है। क्रोधमूर्ति परशुराम एकाधिक बार राम को अपने कठोर कुठार की धार उतारने की बात कहते हैं—

मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौं लौं नहीं सुख जौ लगि तू रघुबीर को श्रोण सुधा न पियो रे॥

अन्यत्र वे इसी बात को कहते हैं—

राम तिहारे कंठ को श्रोनित पान को चाहै कुठार पियोई।

पहले तो राम सीधे-सीधे यही प्रश्न करते हैं कि हमारा अपराध क्या है परंतु उसका अत्यंत विषसिंचित उत्तर परशुराम जी देते हैं।

राम—*सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरै तुमही तौ कहौ।*
परशुराम—*बाहु है दोऊ कुठारहिं केशव आपने धाम को पंथ गहौ॥*

शील की मर्यादा का राम एक सीमा तक पालन करते हैं तथा परशुराम के ललकारने पर भी एक बार वे यहाँ तक कह देते हैं कि—

विप्रन के कुल को भृगुनंदन, सूर न सूरज के कुल कोऊ ॥

शील और सदाचार की एक सीमा हुआ करती है। परशुराम के प्रति राम उस सदाचार का उस सीमा तक निर्वाह करते हैं पर परशुराम अपने क्रोध के आवेग में राम के गुरु मुनिवर विश्वामित्र तक का अपमान कर डालते हैं—

राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक, देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नन्द तिहारे गुरु जिनते ऋषिवेश किये उबरे हैं ॥

ऐसी स्थिति में राम के मन में क्रोध का आवेश आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है। उसका न उठना ही अस्वाभाविक होता। राम भी कुपित होकर इस प्रकार कहने को बाध्य होते हैं—

भगन कियो सिव धनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं ॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर तेधर डारौं।
सप्त सिन्धु मिलि जाहि होइ सबही तम भारो ॥
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझिजाय वर।
भृगु नन्द संभारु कुठार मैं कियो सरासन मुक्त सर ॥

जिस कुठार का परशुराम जी को गर्व था राम उसी कुठार के उठाने के लिए उन्हें ललकारते हैं। राम के मन में क्रोध की यह स्वाभाविक उपज कितनी सच्ची है, संवाद ही इस सच्चाई का मूल है।

अन्य अनेक संवादात्मक स्थलों के होते हुए भी कथोपकथनात्मक कौशल की दृष्टि से रावण-अंगद संवाद विशेष रोचक बन पड़ा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि केशव के ये सवाद गोसाईं जी के रावण-अंगद संवाद से अधिक सुन्दर बन पडे हैं।

'गोस्वामीजी ने सभा की शिष्टता, दूतों की मर्यादा तथा रावण के अखंड प्रताप की उपेक्षा कर अंगद द्वारा ऐसी बातें कहलाई हैं जो राजकीय मर्यादा के

बिलकुल विपरीत बैठती हैं। परंतु केशव ने दोनों ओर की मर्यादा का पूरा ध्यान रक्खा है। अंगद कभी भी इस बात का विस्मरण नहीं करता कि वह एक दूत के रूप में रावण ऐसे प्रतापी राजा के सामने खड़ा है, परंतु वह अत्यंत विनम्र भी नहीं है। उसकी नम्र वाणी में अर्थगर्भत्व है, उसकी उक्तियाँ देखने में सरल पर मर्मभेदिनी हैं। उसके इस प्रकार के वाक्यों के मर्म अथवा प्रयोजन के पहचानने में शब्द की अभिधा और लक्षणा शक्तियाँ असमर्थ होती हैं। रावण के हनुमान के विषय में यह पूछने पर कि—

कौन है वह बाँधि कै हम देह पूँछ सबै दही ?

अंगद उत्तर देता है—

लंक जारि संहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कही ?

रावण के प्रश्न का प्रश्न रूप मे यह उत्तर अंगद के मुख से निकल कर सहज ही अपना उत्तर आप हो गया है और साथ ही अपनी सरलता के आवरण में एक गूढ़ अर्थ का व्यंजक हो गया है। दूत के इस उत्तर ने अवश्य ही रावण को एक क्षण के लिए निरुत्तर कर दिया होगा तथा रावण के अभिमान पर घड़ों पानी पड गया होगा। इसी प्रकार रावण के प्रश्नों का अंगद द्वारा दिया गया उत्तर देखिये, रावण बालि के विषय में प्रश्न करता है—

है कहाँ वह वीर? अंगद देव लोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो ॥

अंगद के इस उत्तर—'रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो' का लक्ष्यार्थ तो यह हुआ कि रावण ऐसे पराक्रमी को बगल मे दबाने वाला वीर रघुनाथ के बाणों का लक्ष्य हो स्वर्ग लोक को सिधारा और व्यंग्यार्थ यह है कि जब बालि की मृत्यु राम के हाथों हुई तो रावण जिसे बालि ने बगल में दबा रखा था, मृत्यु से किसी प्रकार बच नहीं सकता। गूढोत्तर अलंकार के सहारे केशव ने इस प्रकार अपने संवादों में सप्राणता भर दी है। कभी-कभी एक-एक पंक्ति में पात्रों की दो-दो बार बातचीत कवि के असाधारण शब्द चयन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है—

कौन के सुत ? बालि के; वह कौन बालि ? न जानिये ?

इस प्रकार के संवादों में भाषा की भावानुकूलता देखने योग्य है।

अगद अनेक प्रकार से रावण को समझाकर राम के प्रति विरोध की भावना से उसे मुक्त करना चाहता है, पर राजनीति-कुशल रावण अपनी ही चाल चलने मे सलग्न है, वह अगद को अपने पिता के प्रतिकार की याद दिलाकर उसे अपनी सेना से सहायता देने का तथा पिता का राज्य उसे दिला देने का प्रलोभन देता है—

अंगद संग ले मेरौ सबै दल, आजुहि क्यों न हतै बापु मारै।

तथा

देहि अंगद राज तोकहँ मारि बानर राज को।

परंतु रामभक्त अंगद रावण की कूटनीति को पक्की तरह पहचानता है। राम का वह भक्त इन तृष्णाओं एवं कामनाओं से नितात अप्रभावित है। वह इन प्रलोभनो से डिगता हुआ प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार के उत्कृष्ट संवादात्मक स्थलो की रामचंद्रिका मे प्रचुरता है। ऐसे स्थलों पर केशव ने पात्रों की विशेषताओं का निर्वाह कथोपकथन में बडे कौशल से किया है। अंगद की मर्यादित वार्त्ताओं मे मंदोदरी तक के लिए 'देवि' शब्द का स्थान है, परंतु यह स्मरणीय विषय है कि अंगद की बातों मे ऊपर से जितनी सरलता है भीतर से उतनी ही आघात करने की शक्ति भी है। इस सम्बन्ध मे पं० कृष्ण शकर जी शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—'उत्तर-प्रत्युत्तर के क्रम से बातों की धारा को ऐसी चतुराई से मोड़ा है कि कहीं कृत्रिमता भी नहीं आने पाई है और रावण का अपमान भी हो गया है।'

इनके अतिरिक्त लव-कुश के उन संवादों की जो ग्रन्थ के अंत में आये हैं आलोचकों ने बडी सराहना की है। कुश और लव, भरत और शत्रुघ्न आदि से बुद्धि भरी तथा विभीषण, अंगद, सुग्रीव आदि से हृदयवेधिनी बाते कहते हैं। ये संवाद प्रबंध के अन्दर भलीभाति खप जाते हैं (अन्य सवादो की भाँति स्वतंत्र नहीं हैं) लव-कुश के वाक्य प्रायः छोटे-छोटे, तथ्य-प्रकाशक और कार्यक्षिप्रता के प्रेरक हैं। वे चरित्र-चित्रण में भी सहायक होते हैं।

केशव के रुचिर सवादों से सारी रामचंद्रिका भरी पडी है। वर्णनात्मकता के बाद इस ग्रन्थ में सवादों का ही महत्व है। संवादों मे साहित्यिक क्षमता के साथ साथ अभिनयात्मकता भी है। कथानक के विकास में उनसे पर्याप्त सहायता ली गई है। तथा प्रायः पात्रों के संवादो के निर्देशन के लिए पात्रो के नाम पृथक से दे दिये गए हैं। केशव के से मुन्दर संवाद प्राचीन हिन्दी साहित्य में सचमुच कम देखने मे आते हैं। लाला भगवानदीन लिखते हैं कि केशव के सवादों में संस्कृत नाटककार भास के नाटकों का सा आनंद आता है। यों तो सारी रामचद्रिका तथा उसके सवाद, वर्णनादि सभी छंदान्तर शैली मे लिखे गये हैं, तथापि यत्र-तत्र कवि अपनी शैलो की विशिष्टता दिखाने मे भी तत्पर हुआ है यथा सुमति, विमति संवाद मे सुमति राजाओं का लक्षण सहित निर्देश करते हुए उनका परिचय मागता है और विमति उनके उत्तर देता है, यहाँ पर सुमति के प्रत्येक प्रश्न—दोहा में और विमति के प्रत्येक उत्तर सोरठा मे मिलते हैं। ऐसे स्थलों पर ही केशव की विशिष्टता के दर्शन होते हैं।

केशव का काव्य-कौशल

वस्तुतः केशव भक्ति के उन्मेष और भाव के अतिरेक में आमग्न हो मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति को अपने काव्य के संस्पर्श से तरंगित करने वाले उन भगवद्-भक्त कवियों में न थे जिनके द्वारा हिन्दी काव्य का भावपक्ष एक सीमा तक पहुँच चुका था। स्वभावजन्य वह प्रतिमा जो सूर और तुलसी, कबीर और जायसी में देखने में आती है, हमें केशव में नहीं मिलती और इसलिए वे प्रकार की दृष्टि से इन कवियों से अलग जा बैठते हैं। उनका संसार, उनकी कल्पना तथा उनकी शैली भिन्न हो जाती है; परन्तु इससे यह तात्पर्य निकालना कि केशव का महत्व किसी भी प्रकार कम हो जाता है सर्वथा अयुक्तिसंगत है। केशव उन युगान्तरकारी कवियों में गणनीय हैं जो अपनी प्रतिमा के सहारे साहित्य की धारा को एक विशिष्ट प्रवाह देने में समर्थ हुए हैं। उनकी रचनाएँ कला के प्रश्रय द्वारा एक ऐसे कलाकाल के प्रवर्तन में सफल हुई हैं जिसे साहित्य के इतिहासकारों ने रीतियुग के नाम से अभिहित किया है।

केशव के काव्य में हम भावपक्ष के स्थान पर कलापक्ष की प्रधानता पाते हैं। उनके पास संस्कृत साहित्य की पुष्कल संपत्ति थी। संस्कृत के धुरीण पंडितों के वंश में जन्म लेकर तथा उस वातावरण में पालित-पोषित होकर जहाँ पाण्डित्य जीवन की पहली आवश्यकता थी, केशव किञ्चित संकोच के साथ भाषा-काव्य-क्षेत्र में उतरे। इसी कारण उनकी समस्त रचनाओं में संस्कृत के उत्तमोत्तम लक्ष्य एवं लक्षण ग्रंथों का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

केशवदास जी रस को काव्य की आत्मा समझने वाले कवि न थे। उनके मत में तो कविताकामिनी तब तक शोभा नहीं प्राप्त करती जब तक वह प्रयत्नपूर्वक मनुष्य द्वारा सज्जित नहीं की जाती—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूषन विना न सोहई, कविता वनिता मित्त ॥
(कविप्रिया)

इतना ही नहीं केशव तो यहाँ तक कहते हैं कि 'निराभरण' अथवा अलंकार-हीन काव्य में 'नग्नदोष' आ जाता है। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वे रस के महत्व की अवहेलना करते हैं। वे रस को भी काव्य का एक विशेष अंग मानते हैं तथा जो काव्य रस-रहित होता है उसे सदोष बतलाते हैं। उनके द्वारा निर्धारित काव्य दोषों मे 'हीन-रस' भी एक दोष है। 'रसिकप्रिया' जैसा बड़ा ग्रंथ स्वतः इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि वे रस को काव्य मे उचित प्रतिष्ठा देने के पक्षपाती थे, किन्तु एक शब्द में निष्कर्ष यह है कि वे काव्य की आत्मा अलंकार मानते थे, रस नहीं। वे एक चमत्कार-प्राण कवि थे, सीधी-सादी उक्तियों अथवा हृदय को झकझोर देने वाली भावनाओं का उनके निकट विशेष महत्व न था वरन् उक्तिवैचित्र्य, कल्पनागत चमत्कार तथा शब्दार्थगत वैचित्र्य से ही वे काव्य की सच्ची शोभा मानते थे।

अलंकार-विधान—श्लेष, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, सन्देह आदि केशवदास जी के अत्यत प्रिय अलंकार हैं तथा इनके सुन्दर-से-सुन्दर प्रयोगों में ही उनकी प्रतिभा की झलक मिलती है। छन्द क्या छोटे हों क्या बड़े, वे अपनी श्लिष्ट शब्द-योजना के सहारे अनेक अर्थों को कुशलता से ध्वनित कर देते हैं। रामचन्द्रिका मे उनका काव्यकौशल अपने चरम रूप में प्रकट हुआ है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

ति न नगरी ति न नागरी, प्रति पद हंसक हीन।
जलज हार सोभित न जहं, प्रकट पयोधर पीन ॥

जनक के राज्य की प्रत्येक नगरी पद-पद पर हंस, जल तथा कमल समूहों से युक्त जलाशयों से परिपूर्ण प्रतीत होती है। श्लेष द्वारा इस छन्द की दूसरी व्यंजना यह है कि जनकपुरी की प्रत्येक नवेली के चरण नूपुरों की ध्वनि से, सदा अनुरणित होते रहते हैं तथा वहाँ की प्रत्येक युवती के उन्नत पयोधर कमल की

माला से अनुरंजित हो रहे हैं। केशव ऐसी ही भावाभिव्यक्ति को काव्य की संज्ञा देते थे। उनका समस्त काव्य इसी प्रकार स्थान-स्थान पर श्लेषों के सौन्दर्य से जड़ा हुआ है। वाटिका, पचवटी, दण्डक, वर्षा आदि के वर्णनों मे श्लेष की छटा विशेष दर्शनीय है।

केशवदास जी कल्पना के धनी थे। बनवासी राम-लक्ष्मण और सीता की मंजुल त्रिमूर्ति देखकर वे कहते हैं—

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंश के है मनो भाग भारे मनो॥
देवराजा लिये देवरानी मनो पुत्र सयुक्त भूलोक में सोहिये।
पक्ष दूसधि संध्या सँधी है मनो लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिये॥

अंतिम चरण की विशेषता का उद्घाटन करते हुए लाला भगवानदीन ने लिखा है—"राम, सीता और लक्ष्मण मार्ग मे चलते हुए कैसे मालूम पड़ते हैं मानों दोनों पक्षों की सन्धि (पूर्णमासी या अमावस) की तीनो सध्याएँ सन्निकट होकर एकत्र हो गई हैं जिन्हे प्रत्यक्ष ही अत्यंत निर्मल देखकर मनमोहित होता है। सामवेदी सध्या मे यह प्रमाण है कि—प्रातः संध्या का रंग लाल, मध्याह्न संध्या का रंग श्वेत तथा साय सध्या का रंग श्याम है। इस उक्ति से यह भी लक्षित होता है कि केशवदास जी सामवेदी सध्या ही किया करते थे (अर्थात सामवेदी सनौढिया ब्राह्मण थे)। यहाँ कवि ने राम, लक्ष्मण और सीता के वर्ण सौन्दर्य पर अपनी कल्पना का कोष निछावर किया है। उक्त छन्द मे शब्दों की सुष्ठु और कर्णप्रिय विनियोजना मिलती है।

केशवदास जी अभिव्यक्ति की रीति अथवा प्रणाली पर विशेष बल देते थे। संदेह अलंकार के आश्रय से कई स्थलों पर उन्होंने वर्ण्य विषय की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। वन-वन में सीता का पता पूछने वाले राम ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचते हैं। वहाँ वे सुग्रीव द्वारा दिए गए नूपुरादि देखते हैं। जानकी के उत्तरीय को देख श्रीराम सहसा विचार में पड जाते हैं। विचार करते हुए राम की उस दशा का चित्रण कवि सदेह के माध्यम से इस प्रकार करता है—

पजर कै खंजरीट नैनन को केशौदास
कैधौं मीन मानस को जल है कि जारू है।
अग को कि अगराग गेंडुआ कि गल सुई
किंधौं कोटि जीव ही को उर को कि हारू है॥
वदन हमारो काम केलि को कि ताड़िवे को
ताजनो विचार को कै व्यजन विचारू है।
मान की जमनिका, कै कंजमुख मूँदिवे को
सीता जू को उत्तरीय सब सुख सारू है॥

वियोगी राम सीता के परिधान को पाकर सहसा सुखोपभोग के उन क्षणों की स्मृति करने लगते हैं जो उनके मन-मानस मे एक क्षण के लिये आनन्द की लहरे तरंगित कर देती है। वे सोचने लगते हैं कि यह उत्तरीय हमारे रति-केलि का उत्तेजक है या मेरे खजन नेत्रों का पिजडा है अथवा मानिनी कमलमुखी सीता के मुख का आवरण है। इस प्रकार कवि यहाँ विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत स्मृति, वितर्क आदि सचारियों को जाग्रत करने मे समर्थ हुआ है।

राम अथवा सीता का रूप अथवा उनकी अंग-छटा का वर्णन करते समय तो केशवदास जी की अभिव्यक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। उदाहरणों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी—

(क) बैठे जराय जरे पलिका पर राम सिया सबको मन मोहैं।
ज्योति समूह रहो मढ़ि कै सुर भूलि रहे बपुरे नर को हैं॥
केशव तीनहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
सोभन सूरज मडल माँझ मनो कमला कमलापति सोहैं॥
(उत्प्रेक्षा)

(ख) को है दमयन्ती इन्दुमती रति राति दिन
होहिं न छबीली छन छबि जो सिगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप
जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये॥

मदन निरूमम निरूपन निरूप भयो,
चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये ।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तो वारि वारि डारिये ॥
(प्रतीप)

(ग) तहँ सोभिजें सखि सुन्दरी जनु दामनी वपु मण्डि कै।
घनश्याम को तनु सेवहीं जड़ मेघ ओघन छण्डि कै ॥
यक अंग चर्चित चारु चंदन चन्द्रिका तजि चन्द को।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनंद-कंद को ॥
(उत्प्रेक्षा)

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर रामचन्द्रिका में ही कवि ने सीता के मुख का वर्णन तीन छन्दों में एक साथ प्रस्तुत किया है। पहले छन्द में सीता के मुख की तुलना कमल से की गई, दूसरे छन्द में कवि को चन्द्रमा उनके मुख का उचित उपमान प्रतीत होता है, थोड़ा और विचार करने पर कवि को लगा जैसे ये दोनों ही उपमान सीता के मुख की समता नहीं कर सकते इसलिए तीसरे छन्द में कवि ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी है—

देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द,
ताते मुख मुखै सखी कमलै न चन्द री।

यदि इस पंक्ति को पढ़ कर बिना पूर्व के दो छन्दों से इसकी संगति बिठाये कोई यह कह दे कि केशव को प्रकृति के कमल और चन्द ऐसी दिव्य विभूतियों में कोई राग न था, वे उन्हें देखना न पसंद करते थे, तो ऐसी समझ का क्या इलाज! वास्तव में ऊपर के संकेत किये गये प्रसंग में सीता के रूप सौन्दर्य का अच्छा उत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है। सच तो यह है कि केशवदास जी की औपम्य-दृष्टि बड़ी ही मार्मिक थी तथा उत्प्रेक्षा के वे अनन्य आचार्य थे। कहीं-कहीं तो उनकी उत्प्रेक्षाएँ बड़ी ही सुकुमार एवं अंतर्स्पर्शिणी हैं तथा सीता की सखियों को देखिए, जो उनके साथ बैठी हुई शोभित हो रही हैं—

मुख एक है नत लोक लोचन लोल लोचन के हरे ।
जनु जानकी संग सोभिजें शुभ लाज देहहिं को घरे ॥
तहं एक फूलन के विभूषन एक मोतिन के किये ।
जनु छीर सागर देवता तन छीर छींटन को छिये ॥

(उत्प्रेक्षा)

सलज्ज यौवना सखी का यहाँ चित्र उपस्थित हो जाता है। सुकुमार भावनाओं से दी गई मिसालें मध्यकाल के कवियों मे बहुत नहीं मिलतीं।

अशोक वाटिका में सीता की वियोगिनी मूर्ति पर जब कवि की दृष्टि पड़ती है तो वह उनकी म्लान मुखमुद्रा से परिचित कराने के लिये जाने किस कल्पना लोक से उपमाएँ बटोर लाता है और उनकी अविरल वृष्टि करने लगता है—

घसी बुद्धि सी चित चिंतानि मानो । किधौं जीभ दंतावली में बखानो ॥
किधौं घेरि के राहु नारीन लीनी । कला चन्द्र की चारु पीयूष भीनी ॥

ये अप्रस्तुत तो स्थिति व्यंजना में बड़े ही सटीक बन पड़े हैं, इनसे परिस्थिति का बड़ी ही सच्चाई से भान हो जाता है किन्तु नीचे दी गई उपमाएँ बौद्धिक अधिक हैं, भाव अथवा परिस्थिति निर्देशक कम—

किधौं जीव कौ जोति मायान लीनी । अविधान के मध्य विद्या प्रवीनी ॥
मनों संवर स्त्रीन में काम वामा । हनूमान ऐसी लखी राम रामा ॥

अनेक स्थलों पर ऐसा अवश्य हुआ है कि केशवदास जी ने किसी वस्तु या प्रसंग या मुद्रा को लेकर उपमानों की झड़ी तो लगा दी है, किन्तु उससे वस्तु-चित्रण नहीं हो सका है, उपमान केवल उपमान होकर रह गया है, उपमेय व्यंजना में सहायक नहीं हुआ है। ऐसी दशा मे पाठक का ध्यान वर्ण्य-विषय से हट कर कल्पना-जन्य उपमानों में जा उलझता है। सीता जी की विरह दशा का परिचय हनुमान जी श्रीराम को उपमानों की भाषा में देते हैं—

भौंरनी ज्यौं भ्रमति रहति बन वीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है ।

वर्णन के अन्तर्गत मणि-मंडित-मंडप, चन्द्रमुखी युवतियों के साथ वाग्विलास, राम का नख-शिख वर्णन तथा सीता रूप वर्णन वाले प्रसंग उत्तम हैं।

अमल कपोलै आरसी बाहुइ चंपकमार।
अवलोकनै विलोकिये मृगमदमय घनसार॥
गति को भार महाउरै आँगि अंग को भारु।
केशव नख सिख सोभिजे सोभाई सिंगारु॥

उपर्युक्त दोहों में अंकित सौन्दर्य अकृत्रिमता से वर्णित होने के कारण अत्यत हृदयस्पर्शी है, किन्तु इस प्रकार का वर्णन उनकी स्थायी प्रवृत्ति नही है।

अंतर्जगत के विश्लेषण मे केशवदास जी सामान्यतया प्रवृत्त नही हुए हैं, किन्तु जहाँ कहीं भी उन्होने ऐसा किया है, उन्हें पूरी सफलता मिली है। सीता की वियोगिनी मूर्ति की कितनी स्पष्ट और करुणा व्यंजक दशा है, देखिये—

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी॥

"मृणाली पक के ससर्ग से जैसी मैली है वैसी ही उखड़ जाने से कातिहीन हो रही है। सीता का जितना सुन्दर वाह्य चित्र है उतना ही सुन्दर आन्तरिक चित्र भी है।"* इसी प्रकार यह सुनकर कि सूर्योदय होने पर शक्ति-आहत लक्ष्मण निष्प्राण हो जायंगे, क्रोध के आवेग में राम का यह कह उठना बड़ा ही स्वाभाविक है—

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौ अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥
वलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इन्द्र अब।
विघारन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निज होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिट जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥

---

*डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

अष्टछाप के अन्य कवि ब्रज-माधुरी का प्रसार कर रहे थे, उधर सूफी कवि अपने आख्यान अवधी मे लिख-लिखकर प्रेम की महिमा गा रहे थे । अवधी प्रबन्ध काव्य के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो चुकी थी इसलिए तुलसीदास जी ने भी अपना रामचरितमानस अवधी मे ही लिखा, फिर अवधी उनके इष्टदेव के जन्म-स्थान की भी भाषा थी। केशवदास जी ने अपना राम-काव्य ब्रज-भाषा में लिखा, यह उस समय एक नया प्रयोग-सा हुआ, यह दूसरी बात है कि प्रबंध की धारा रामचन्द्रिका मे विशृंखलित हो गई, किन्तु ब्रजभाषा मे प्रबंध-काव्य लिखा जा सकता है यह प्रमाणित हो गया। केशवदास जी ने ही 'वीरसिंहदेव चरित' आदि प्रबंध-ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे, उधर नन्ददास ने भी कई सुन्दर कथा-काव्य* ब्रज में प्रस्तुत किये, परवर्ती काल में नरोत्तमदास जी का 'सुदामा-चरित' लिखा गया जो बहुत ही प्रसिद्ध रहा। केशवदास जी ने ब्रज को अपने काव्य का माध्यम बनाया। संभवतः इसका एक कारण यह था कि ब्रज अवधी की अपेक्षा अधिक व्यापक भाषा थी, दूसरे वह अपने स्वाभाविक गुणों के कारण कुछ अधिक आकर्षक थी, तीसरे वह केशवदास जी के प्रान्त की निकटवर्तिनी भाषा थी। उनकी साहित्यिक ब्रजभाषा में बुन्देलखण्डी का मिश्रण काफी मिलता है और यह स्वाभाविक ही था। इस प्रकार के बुन्देलखण्डी शब्द जैसे खारक (छोहारा), थोरिला (खूँटी), दुगई (दालान), गौरमदाइन (इन्द्रधनुष) उनके काव्य में बराबर व्यवहृत मिलते हैं। मुहावरे और कहावतों के प्रयोग से उनकी भाषा की व्यंजकता मे यथेष्ट अभि-वृद्धि हुई है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

कहावतें—

(क) *कहि केशव आपनि जाँघ उघारि के आपहि लाजन को मरई।*
(ख) *सोने सिंगारहु सोंधे सँवारहु पीतर की पितराई न जाई॥*

मुहावरा—

(क) *पीचित की चितसारी चढ़ी चित की पुतरी भई कौ लौं रहौंगी।*

---

*रूपमंजरी, रासपंचाध्यायी आदि।

संस्कृतज्ञ होने के कारण वे संस्कृत के तत्सम शब्दों को उनके शुद्ध रूप मे लिखना ही अधिक उपयुक्त समझते थे —

सब श्रृंगार मनो रति मन्मथ मोहै ।

ब्रज मे यद्यपि 'श्रृंगार' को सिंगार ही लिखा जाता है, किन्तु ऐसा न कर यहाँ केशवदास जी ने उसे अपने शुद्ध रूप मे ही रहने दिया है। इस प्रकार के शुद्ध रूपों को उन्होंने उसी अवस्था मे परिवर्तित किया जब ऐसा करने से काव्य में विशेष रमणीयता संभावित रही है अथवा अनुप्रास आदि का आग्रह रहा है। उदाहरण के लिये देखिये—

(क) *सबै सिंगार सकल सुख सुखमा मंडित ।*

(ख) *जानै को केशव केतिक बार मै सेस के सीसन दीन्ह उसासी ।*

यहाँ 'श्र' अथवा 'श' को 'स' कर देने से भाषा के सौन्दर्य एवं स्वरूप को अधिक रमणीयता ही मिली है, उसमें अनुप्रासों का सौन्दर्य आ गया है। उनकी प्रयुक्त भाषा पर संस्कृत का गहरा प्रभाव है। फलतः उनकी भाषा में संस्कृत शब्द ही नहीं, शब्दों के संस्कृत रूप भी देखने को मिलते है। यथा—

(क) *निजेच्छया भूतल देहधारी ।*
(ख) *उरसि अंगद लाज कछू गहौ ।*
(ग) *लीलयैव हरि को धनु सांध्यौ ।*

कथा के बीच-बीच में कहीं-कहीं तो वे पूरा वृत्त ही संस्कृत में लिख गए हैं—

रामचन्द्र पद पद्मं वृंदारक वृंदाभिवंदनीयम् ।
केशवमति भूतनया, लोचनं चंचरीकायते ॥

(शार्दूलविक्रीड़ित)

सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संभार संभावना ।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जना शोभना ॥
राजा राजपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महा मंत्रदा ।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्यापरा सर्वदा ॥

उनकी भाषा का सामान्य रूप देखिये—

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै।
कान मूँदि बार-बार सीस बीसधा धुनै॥
चापकीय रेख खांचि देव साखि दै चले।
नाखिहैं ते भस्म होहिं जीव जे भले बुरे॥

इस उदाहरण में उनकी भाषा मे ब्रज के साथ-साथ बुन्देलखण्डी, सस्कृत (तत्सम) आदि के शब्द मिले हुए हैं और इसमे उनकी भाषागत अनेक विशेषताओ की झलक देखी जा सकती है। केशवदास जी भाषा के प्रयोग मे अत्यत कुशल हैं। स्थान-स्थान पर अपने समर्थ प्रयोगो द्वारा वे शब्दों से अपना अर्थ बलात खींच लिया करते हैं। शब्द कोई होता है अर्थ कुछ ले लिया जाता है और इस दूसरे अर्थ के लेने मे कोई प्रयत्न नही करना पडता। जैसे—

'छिद्र ताकि छुद्र बुद्धि लंकनाथ आइयो।'

यहाँ 'छिद्र' शब्द से 'छेद' या 'सुराख' अर्थ न लेकर 'मोका' या 'अवसर' का भाव ग्रहण करना पड़ता है। नये शब्द भी वे आवश्यकतानुसार गढ़ लिया करते हैं जैसे पहले के अवतरण मे आया हुआ शब्द है 'चापकीय'। ब्रज के साथ-साथ कहीं-कही उनकी भाषा में अवधी के शब्दो का भी प्रयोग मिलता है जैसे इहाँ, उहाँ, दिखाउ, रिझाउ, दीन, कीन आदि शब्द।

(क) *एक इहाँ ऊ उहाँ अति दीन सु दे त दुहूँ दिसि के जन गारी।*
(ख) *प्रभाउ आपनो दिखाउ छोड़ि राज भाई कै।*
(ग) *हँसी बंधु त्यों दृग दीन। श्रुति नासिका बिनु कीन॥*

वे 'होई' और 'होय' दोनों का प्रयोग करते हैं। प्रतीत यह होता है कि इस काल के महाकवियों का विचार साहित्यिक भाषा को व्यापक बनाने का था। इसी कारण वे ब्रज तथा अवधी के कतिपय आवश्यक एवं उपयोगी शब्दो के व्यवहार में कोई भेद नही रखना चाहते थे। इस प्रकार के प्रयत्न सूर और तुलसी भी करते देखे जाते हैं।

केशवदास जी ने तत्कालीन साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त न होने वाले शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे अलोक (कलंक), लॉच (रिश्वत), ऐलो (आड़), नारी (समूह)। साहित्यिक भाषा को विशद व्यंजकता एवं उत्कृष्टता प्रदान करने के ही विचार से उन्होंने ऐसा किया अथवा कतिपय शब्दों के पुनरुद्धार की ओर उनकी दृष्टि रही होगी।

'मार्दव और मंजुलता के विचार से केशव का शब्द-संचयन तुलसी की अपेक्षा कुछ न्यूनतर है। उनके ब्रज में बुन्देलखण्डी और अवधी का भी प्रभाव है। समास-बहुला शैली तुलसी की अपेक्षा अधिक है क्योंकि भाषा को उत्कृष्ट बनाने में यह शैली बहुत सहायक होती है। केशवदास जी सुपठित जनता के उपयुक्त काव्य लिखने का उद्देश्य लेकर चले, अतः शब्दावली को समुन्नत करना आवश्यक था। छोटे-छोटे छन्दों में भाषा को संकुचित और अधिक व्यंजक रखना पड़ा है। उनकी भाषा के मुख्यतया तीन रूप मिलते हैं—

(१) वर्णनात्मक भाग में भाषा समुन्नत, समूर्त शब्दों से प्रभावित, परिष्कृत और उत्कृष्ट है।

(२) संवादात्मक भाग में भाषा का चलता हुआ (प्रायोगिक) स्वरूप तथा भाषा-साकोच्य है।

(३) कथात्मक भाग में क्रिया-सूचक अथवा क्रियात्मक शब्दों का प्राचुर्य और धारावाहिकता, सामान्यता तथा सरलता पाई जाती है।

कहा जाता है कि केशव ने शब्दों के प्रयोग में बहुत कुछ तोड़-मरोड़ की है, किन्तु यह वस्तुतः अधिक युक्तिसंगत आक्षेप नहीं। रचना में केशव ने भाषा को साहित्यिक क्षमता और एकरूपता देने का प्रयत्न किया है। इस बात में केशव का अनुकरण सफलतापूर्वक बिहारी ने किया है। घनानंद और सेनापति के प्रयोग भी अच्छे हुए हैं। भाषा के प्रयोग में केशव अलंकार के आधार पर वृत्तियों और गुणों का विशेष ध्यान रखते हैं। ओज, लालित्य और कान्ति नामक गुणों को वे प्रधानता देते हैं। प्रसाद और माधुर्य अवश्य उस कोटि का नहीं जैसा तुलसी की भाषा में है।'*

*डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

केशव की परंपरा

साहित्य के आविर्भाव काल मे अन्तःकरण से प्रेरित जो काव्य रचना हुआ करती है उसकी शैली सरल एवं अलंकार निरपेक्ष होती है। प्रचुर मात्रा मे काव्य प्रणयन हो जाने के बाद कविता के नियमों का निर्माण होता है। इस प्रकार किसी भी साहित्य-परंपरा में लक्ष्य ग्रन्थों की रचना हो जाने पर ही उनका आधार लेकर लक्षण ग्रन्थ बनाये जाते हैं। यह बात संस्कृत साहित्य के विकास के इतिहास मे देखी जा सकती है तथा हिन्दी में भी रीति ग्रन्थों की रचना का यही क्रम रहा है।

संस्कृत साहित्य के रीति ग्रन्थो में विवेचना-शैली अत्यत सुन्दर थी। रीतिकार स्वतंत्र कवियों से सर्वथा भिन्न कोटि के व्यक्ति होते थे। यही कारण है कि उन्हें अपने रीति ग्रन्थो में विषय के विवेचन में पर्याप्त स्वतंत्रता रहती थी। तर्कपूर्ण विवेचना शैली जैसी संस्कृत रीति ग्रन्थों में उपलब्ध है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्यशास्त्र में अनेक वादों का प्रवर्तन हुआ तथा आचार्यों के पृथक संप्रदाय स्थापित हुए।

प्राचीन उपलब्ध रीति विषयक रचनाओं में भरत मुनि का नाट्यशास्त्र एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। उनके नाट्यशास्त्र में केवल चार अलंकार निरूपित हुए— (१) उपमा (२) दीपक (३) रूपक और (४) यमक। भरत मुनि के अनंतर वेद-व्यास के 'अग्निपुराण' के साहित्य-प्रकरण में ७ शब्दालंकारों एवं १५ अर्थालंकारों का उल्लेख हुआ। उनके लक्षणमात्र लिखे गए हैं। सात शब्दालंकार इस प्रकार हैं—(१) अनुप्रास (२) यमक (३) चित्र (४) पद्म (५) प्रहेलिका (६) गुप्त (७) समस्या। उनके पन्द्रह अर्थालंकार ये हैं—(१) स्वरूप (स्वभावोक्ति) (२) उपमा (३) रूपक (४) सहोक्ति (ये चार सादृश्य के अन्तर्गत दिये गये हैं) (५) अर्थान्तर न्यास (६) उत्प्रेक्षा (७) अतिशयोक्ति (८) विशेषोक्ति (९) विभावना (१०) विरोध (११) हेतु (१२) आक्षेप (१३) समसोक्ति (१४) अपह्नुति

(१५) पर्यायोक्ति। वेदव्यासजी ने वर्गीकरण की जिस पद्धति का श्रीगणेश किया उसका आज तक अनुसरण होता आया है। उनमे हमें किसी प्रकार के वाद की प्रवृत्ति नही दिखाई पडती।

'नाट्यशास्त्र' और 'अग्निपुराण' के पश्चात् के उपलब्ध ग्रन्थो में सबसे प्रथम ग्रन्थ जिसमे लक्षण और उदाहरण सहित अलंकारो की व्याख्या हुई, वह है भामह का 'काव्यालकार'। इसमें ३८ अलकारों का निरूपण है। ये वस्तुत 'वक्रोक्तिवादी' थे। इनके वक्रोक्तिवाद को आगे चलकर कुंतक ने उठाया तथा 'वक्रोक्ति जीवित' नाम का एक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लिखा। कुंतक के अनुसार काव्य के प्रत्येक क्षेत्र मे वक्रोक्ति ही प्रधान है। ध्वनि आदि सभी इसी के अतर्गत आते हैं। हिन्दी में इस पद्धति का अनुसरण नही किया गया। आचार्य भामह ने शोभाकारक पदार्थ को ही अलंकार बतलाते हुए कहा "अलकरोतीति अलकारः।" शब्द रचना वैचित्र्य द्वारा काव्य को शोभित करने वाले अलंकारों को शब्दालंकार और अर्थवैचित्र्य की रचना द्वारा काव्य को शोभित करने वाले अलंकारो को अर्थालकार कहते हैं। इस शब्दार्थ-वैचित्र्य को ही भामह ने 'वक्रोक्ति' कहा है तथा इसी को समस्त अलंकारो में व्यापक बतलाते हुए इसे ही अलकारों का एक मात्र आश्रय माना है।

भामह के अनतर 'अलकारवाद' प्रबल हुआ तथा इसी संप्रदाय के अतर्गत उत्तमोत्तम अलकार ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इस काल के आचर्यो का मत इस प्रकार था 'अलंकाराएव काव्ये प्रधानम्'। वे काव्य मे अलकार का स्थान प्रधान मानते थे। रुद्रट ने 'काव्यालंकार', वामन ने 'काव्यालकार सूत्रवृत्ति' भोजराज ने 'सरस्वती कठाभरण' दण्डी ने 'काव्यादर्श' रूय्यक ने 'अलकार-सर्वस्व' वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालंकार', जयदेव ने 'चन्द्रलोक' और केशव मिश्र ने 'अलकार-शेखर' नामक ग्रन्थों मे अलकार विषय का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया।

अलकार संप्रदाय के प्रधान आचार्य दण्डी ने 'उक्तिवैचित्र्य' को ही अतिशयोक्ति कहा तथा उसे ही समस्त अलकारो का एकमात्र आश्रय माना। 'काव्यादर्श' मे दण्डी ने ३६ अलंकारो का निरूपण किया। इनमें 'आवृत्ति दीपक' नाम का

एक नवीन अलंकार रखा। दण्डी का समय ईसा की ७वीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि अलकारवाद की जो तरंग उठी वही शनैः-शनैः चमत्कारवाद के रूप मे परिणित हो गई। हिन्दी के सुप्रसिद्ध चमत्कारवादी कवि केशव ने इन्हीं आचार्यों का अनुसरण किया। उद्भट, वामन (८ वीं शती) रुद्रट (९ वी शती) भोज (११ वी शती पूर्वार्ध) काव्य-रीति के ग्रन्थों का अध्ययन करते रहे। 'अलकारवाद' के पश्चात् 'रसवाद' की लहर उठी। व्यवस्थित रूप मे इसे 'ध्वनिवाद' कहा जा सकता है। इसने प्रायः सभी वादो को दबा दिया। 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वनि को ही काव्य के उत्तम रूप का निदर्शक माना। परवर्ती काल के मम्मट, विश्वनाथ, पण्डित-राज आदि आचार्यों ने इसी विचार पद्धति का अनुगमन किया। वस्तुतः काव्य-रीति का मार्मिक निरूपण इसी सप्रदाय के आचार्यों ने किया। हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य चिन्तामणि, श्रीपति, सुखदेव, शुक्लपति, दास आदि ने इसी सप्रदाय की विचारधारा को ग्रहण किया।

हिन्दी रीतिग्रन्थों के निर्माण काल के पूर्व ही सस्कृत मे काव्य सम्बन्धी अनेकानेक वाद प्रचलित हो चले थे तथा वे बहुत कुछ विकसित भी हो गए थे। समय की माँग का ध्यान रखते हुए हिन्दी के कवियों को स्वतः आचार्य का भी रूप धारण करना पड़ा। इस प्रकार संस्कृत मे प्रचलित आचार्य एवं कवि की पृथक-पृथक कोटियाँ हिन्दी साहित्य मे आकार विलीन हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में उन से विस्तृत विवेचन तथा खंडन-मडन की आशा नहीं करनी चाहिए। हिन्दी के कवियों का ध्यान भी इस ओर न था। उन्होंने अपने-अपने विचारों एवं सिद्धान्तों के अनुसार संस्कृत के प्रचलित संप्रदायो को ज्यों का त्यों स्वीकार किया। केवल कुछ ही कवि परिवर्तन एवं स्वतत्र उद्भावना कर पाए। इस प्रकार का कार्य जो भी हुआ वह अत्यल्प मात्रा मे। अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी के अधिकाँश रीतिग्रन्थो में सस्कृत रीतिग्रन्थों की नकल की गई। हिन्दी के अधिकाश रीति ग्रन्थकारों ने 'रस' और 'ध्वनि' संप्रदायों का अनुसरण किया पर आचार्य केशवदास अलंकार सप्रदाय के ही अनुयायी हुए।

१६ वीं शती में भक्तिकाल का सबसे पहिला जो ग्रन्थ मिलता है वह है—सूरदास की 'साहित्य-लहरी'। इसमें दृष्टि कूटक-पदावली की रचना में 'अलंकारों' एवं 'नायिकाओं' का ध्यान रखा गया है। तुलसी के बरवै-रामायण के अलंकारों को प्रमुख स्थान देने का दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है। सं० १५६८ में कृपाराम की 'हिततरंगिणी' की रचना होती है। इस ग्रन्थ में इस बात का पर्याप्त संकेत मिलता है कि 'रस' एवं अलंकार विषयक कतिपय लक्षण ग्रन्थ उनके समय में अथवा उनसे कुछ पूर्व अवश्य बने थे। उसी काल के आस-पास मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार-सागर' गोपा कवि का 'रामभूषण' और 'अलंकार-चन्द्रिका' करनेस कृत 'कर्णाभरण' 'श्रुति भूषण' और 'भूप-भूषण' ऐसे कुछ ग्रन्थों की रचना का उल्लेख साहित्य के इतिहासकारों ने किया है। इससे स्पष्ट है कि इस काल तक हिन्दी रीतिग्रन्थों की रचना की परंपरा का सूत्रपात हो चुका था, यह दूसरी बात है कि साहित्य शास्त्र में निरूपित काव्यागों का पूर्ण परिचय किसी ने न कराया हो।

रीतिग्रन्थो की इस अविरल परंपरा में 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' ऐसी दो महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखकर केशवदासजी ने अमूल्य योग दिया। वे अलंकार को काव्य की आत्मा मानने वाले अलंकारवादी थे, उनका स्पष्ट मत है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त॥

(कवि-प्रिया)

इस धारणा के अनुसार केशवदासजी ने संस्कृत के अलंकारवादी तथा वैचित्र्य को प्रधानता देने वाले भामह, दण्डी, उद्भट, रुय्यक, केशव मिश्र आदि आचार्यों का अनुगमन किया, जिन्होंने अलंकारो को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया था। यही कारण है कि केशवदासजी भी अलंकारों को उनके संकीर्ण अर्थ में न ग्रहण कर वर्णनीय विषयों को भी अलंकार के ही अंतर्गत मानते हैं। केशवदास जी ने उत्तर कालीन संस्कृत आचार्यों की तरह जिनका अनुसरण अन्य रीति-कालीन कवियों ने किया—अलकार और अलकार्य मे भेद नहीं किया। रुय्यक,

अमर, दण्डी, केशव मिश्र आदि आचार्यों के रीति ग्रन्थों* के सहारे केशवदास जी अपने साहित्यिक सिद्धान्तों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं तथा साथ ही अपने स्वतंत्र मत का भी प्रतिपादन करते हैं।

---

*दण्डीकृत 'काव्यादर्श', अमर रचित 'काव्य कल्प लतावृत्ति' केशव मिश्र कृत 'अलंकार-शेखर' रुय्यक कृत 'अलंकार-सर्वस्व'।

अलंकार-निरूपण

केशवदास जी काव्य में अलंकार को सबसे प्रधान मानते हैं—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त॥

'सुन्दर काव्य के लक्षणों अर्थात् शब्दावली, छन्द, रस, गुण आदि से युक्त होने पर भी बिना अलंकारों के कविता शोभा नहीं देती।' ऐसा विचार रखने के कारण ही वे अलंकारवादी कहे गए हैं। एक समय था जब संस्कृत साहित्य में और हिन्दी साहित्य में भी अलंकार सिद्धान्त की बड़ी धूम थी। संस्कृत साहित्य में यह काल भामह और दण्डी का था, हिन्दी में केशव, सेनापति, देव, बिहारी, और भूषण का। इनके तथा इनकी परंपरा के कितने ही कवि हुए जिन्होंने अलंकारहीन काव्य को सदोष माना और उसे काव्य की संज्ञा देना भी ठीक न समझा। सेनापति प्रभृति कवियों के कथनों में अलकार सम्प्रदाय के धूम की स्पष्ट घोषणा है—

दूषन कौं करि कै कवित्त बिन भूषण कौं,
*जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है।**

केशवदास ने अलंकारों के दो वर्ग किये (१) सामान्य (२) विशेष। फिर सामान्य अलंकार के उन्होंने चार भेद बतलाए—(१) वर्ण (२) वर्ण्य (३) भूमिश्री, (४) राज्यश्री। † इन चारों सामान्यालंकारों का विस्तृत वर्णन क्रमशः 'कविप्रिया' के ५वें, ६ठवें, ७वे, और ८वे प्रभाव में हुआ है।

---

* कवित्त रत्नाकर— सेनापति (पहली तरंग, छन्द ७)

† कविन कहे कवितान के अलंकार द्वै रूप।
एक कहैं साधारणै, एक विशिष्ट सरूप॥
सामान्यालंकार को चारि प्रकार प्रकास।
वर्ण, वर्ण्य, भू-राजश्री, भूषण केशवदास॥

जिन्हें केशवदास जी ने सामान्यालकार कहा है वे वास्तव में काव्य के वर्ण्य विषय हैं न कि अलंकार। यह वर्गीकरण हिन्दी के विद्यार्थी को नया सा लगेगा, किन्तु यह केशव की कोई निजी उद्‌भावना नही है, इसे उन्होंने संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्रियों से ग्रहण किया है। * सस्कृत अलंकार शास्त्र के प्राचीन ग्रथों में अलकार का एक व्यापक अर्थ स्वीकृत हुआ है। भामह, दण्डी आदि ने भी उसे इसी रूप मे स्वीकार किया है। वामन ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—

काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौंदर्यमलकारः।

अलकार से काव्य की सार्थकता है और अलकार से तात्पर्य होता है सौन्दर्य—

अलङ् क्रियते अनेनेति अलंकारः।

वृत्तिकार भी कहते हैं—

अलंकृतिरलंकारः।

इस प्रकार ये आचार्य अलंकार्य और अलंकार के भेद को नहीं मानते। उनके अनुसार काव्य का वर्ण्य तथा वर्णन शैली दोनों ही अलकार के अन्तर्गत है, यही कारण है कि दण्डी ने अलंकारों को काव्य का शोभा कारक धर्म कहा है † न कि काव्य की शोभा का सवर्धन करने वाला एक तत्व। अलकार संप्रदाय के आचार्यों ने इस प्रकार का आदरपूर्ण स्थान काव्य के अन्तर्गत अलंकारों को दिया। इन्ही के आधार पर केशवदास जी ने अलकारों के दो भेद ऐसे दिये हैं जिनका संबंध काव्य के दो मूल तत्वों से हैं. (१) वर्ण्य विषय (२) वर्णन शैली। इन दोनों तत्वों को सुन्दर और सुरुचिपूर्ण बनाने पर ही काव्य में सौन्दर्य का विधान हो सकता है। सौन्दर्य का विधान करने में समर्थ होने के लिए कवि में प्रतिभा

---

*देखिए अमरचन्द कृत 'काव्य कल्पलतावृत्ति' (प्रथम और चतुर्थ वितान) तथा केशवमिश्र कृत 'अलंकार शेखर' (१६वाॅ और १७वाॅ प्रकरण)

† काव्य शोभाकरानधर्मान् अलकारान् प्रचक्षते—(दण्डी कृत काव्यादर्श)

और ज्ञान (शास्त्र ज्ञान तथा अनुभवजन्य ज्ञान) दोनों की अपेक्षा रहती है।* कवि को यह भी जानना चाहिए कि काव्य के अन्तर्गत किन-किन विषयों का वर्णन हो सकता है। केशव की 'कविप्रिया' में उसी वर्णनीय विषयों की सूची प्रस्तुत की गई है—

(१) वर्ण—सेत पीत कारे अरुण धूसर नीले वर्ण।
मिश्रित केशवदास कहि सात भाँति शुभ कर्ण॥
(कविप्रिया: पाँचवाँ प्रभाव)

(२) वर्ण्य—संपूरण, आवर्त्त, पुनि कुटिल त्रिकोण सुवृत्त।
तीक्षण, गुरु, कोमल, कठिन, निश्चल, चंचलचित्त॥

सुखद, दुखद अरु मंदगति, सीतल, तप्त, सुरूप।
कुस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ठ अनूप॥

सत्य, झूठ, मंडल बरनि, अगति, सदागति, दानि।
अष्टविंश विधि मैं कहे, वर्ण्य अनेक बखानि॥
(छठवाँ प्रभाव)

(३) भूमि—देश, नगर, वन, बाग गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के भूषण, ऋतु, सब काल॥
(सातवाँ प्रभाव)

(४) राज्यश्री—राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत।
मंत्री, मंत्र, प्रयान हय, गय, संग्राम अभूत॥
आखेटक, जलकेलि, पुनि विरह स्वयंवर जानि।
भूषित मुक्तादिकनि करि, राज्यश्रीहि बखानि॥
(आठवाँ प्रभाव)

---

*ऐसा ही विचार आचार्य भिखारीदास ने अपने 'काव्य निर्णय' में प्रकट किया है—

शक्ति कवित्त बनाइबे की जेहि, जन्म नछत्र में दीन्ह विधातै।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन सों, जानै सुनै बहु लोक की बातैं॥

जैसा पहले कहा जा चुका है ये चार ही सामान्यालंकार के भेद हैं तथा प्रत्येक के अन्तर्गत निर्दिष्ट विषय, वस्तु अथवा व्यक्ति ही काव्य के वर्ण्य हो सकते हैं। कविप्रिया के पाँचवे, छठवे, सातवे और आठवे प्रभावो में क्रमशः उपरि निर्दिष्ट समस्त विषयों का वर्णन आचार्य केशवदास ने किया है। ये वास्तव में कवि शिक्षा की चीजे हैं। एक प्रकार से कवि प्रौढोक्ति सिद्ध बाते हैं जो कवि शिक्षा की पुस्तकों (अमरचन्द कृत काव्यकल्पलतावृत्ति, केशवमिश्र कृत अलकार शेखर आदि) में उल्लिखित की जाती रहीं। केशवदास जो अपने इस प्रकार के काव्यादर्श के लिए उक्त आचार्यों तथा उनके पूर्ववर्ती भामह दण्डी और वामन् के विशेष रूप से ऋणी हैं। वास्तव में ये विचार संस्कृत काव्यशास्त्र के विकास की प्रारंभिक अवस्था में ही मान्य था। बाद में यह मत मान्य और प्रचलित न हो सका। स्वय 'काव्य कल्पलतावृत्ति' के कर्ता अमरचन्द ने यह बताया है कि उनके समय में ही तथा उससे कुछ पूर्व भी 'अलकार' शब्द का प्रयोग एक सकीर्ण अर्थ में भी होने लगा था अर्थात् केवल उपमादिको के ही लिए—

पुनरलंकार शब्दोयमुपमादिषुवर्तते।

आगे चल कर जब आचार्यों ने काव्यात्मा की खोज करते हुए नए-नए सप्रदाय—रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस आदि—खडे किये तथा रस सिद्धान्त प्रायः सर्वमान्य सा हो चला तब 'अलकार' काव्य के शोभाकारक धर्म न रह गए, वे काव्य की शोभा के प्रसाधन मात्र ही हो सके। संस्कृत काव्यशास्त्र की बाद की विकसित मीमासा का ही प्रभाव था जो हिन्दी के अन्य रीतिकारो ने केशव का अलंकार विषयक दृष्टिकोण न अपनाया तथा अलंकार के सामान्य और विशिष्ट नामक भेद अस्वीकार किये। इसी से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को लिखना पडा है—"काव्य के स्वरूप और अंगो के सबध मे हिन्दी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के इन परवर्ती ग्रथों (चन्द्रालोक, कुवलयानंद, काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण आदि) का मत ग्रहण किया। इस प्रकार दैवयोग से सस्कृत साहित्यशास्त्र के इतिहास की एक संक्षिप्त उद्धरणी हिन्दी में हो गई।......साहित्य की मीमासा क्रमशः बढ़ते-बढ़ते जिस स्थिति पर पहुँच गई थी उस स्थिति से सामग्री न लेकर

का जो उदाहरण उन्होंने दिया है वह हेतु का न होकर विभावना का हो गया है—

'केशव राग ररौ न ररौ अनसाधे ही साधन सिद्ध भयोई ।

इससे यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि उन्होंने आचार्य दण्डी जिनके आधार पर अलंकार विवेचन किया है, का आशय ही नहीं समझा तो कदाचित् गलत न होगा । हेतु अलंकार वहाँ होता है जहाँ कारण का कार्य के साथ वर्णन किया जाय[1] अथवा कारण को ही कार्य रूप कथन किया जाय[2] । विरोध अलंकार का लक्षण केशवदास जी इस प्रकार देते हैं—

केशवदास विरोधमय रचियत वचन विचारि ।

अर्थात् विरोधमय वचन-रचना जहाँ हो वहाँ विरोध अलंकार होता है । व्यंजना से इसका अर्थ यह निकलता है कि जहाँ शब्दों द्वारा ऊपर-ऊपर ही विरोध झलक रहा हो (किन्तु वास्तव में अर्थ करने पर कोई विरोध न हो) वहाँ यह अलंकार होता है । इसका उदाहरण उन्होंने इस प्रकार दिया है—

बारक विलोकि बलबीर से बलीन कहँ,
करत बरहिं बश, ऐसी बैस बारी है ।

यहाँ लक्षण उदाहरण पर पूर्णतया चरितार्थ हो रहा है । विरोध का भेद करते हुए तो नहीं किन्तु विरोध अलंकार की चर्चा करते हुए केशवदास ने विरोधाभास का लक्षण पृथक् से दिया है * जो विरोध अलंकार के लक्षण से मिलता जुलता ही है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव इन दोनों अलंकारों का भेद नहीं जान सके, किन्तु मानते अवश्य वे इन दोनों को भिन्न थे । सच तो यह है कि विरोध और विरोधाभास एक ही अलंकार है । केशव के विरोध का दूसरा उदाहरण[3] और विरोधाभास का उदाहरण[4] विभावना अलंकार के उदाहरण हो

१ राम सुरूप निहारत ही उर मोद बढे मिथलेस-लली के ।

२ मेरी ऋद्धि समृद्धि है तुवदाया रघुनाथ ।

* बरनत लगै विरोध सो अर्थ सबै अविरोध ।

३ केशव कानन हीन सुनै, सु कहै रस की रसना बिन बातैं ।

४ अकर कहावत धनुष धरे देखियत ।

गये हैं। 'विशेष' अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

साधक कारन विकल जहँ होय कार्य की सिद्धि

अर्थात् विकल (अपूर्ण) कारण द्वारा कार्य सिद्ध होने का जहाँ वर्णन हो वहाँ विशेष अलंकार होता है किन्तु 'यह तो कुवलयानन्द में मानी गई द्वितीय विभावना का लक्षण है, न कि विशेष का।' * विशेष अलंकार में आधार के बिना आधेय की स्थिति होना इत्यादि विलक्षण वर्णन किया जाता है जैसे—

वंदनीय किहि के नहीं वे कविंद मतिमान।
सुरग गए हू स्थित यहाँ जिनकी गिरा महान॥

यह अलंकार भी इस प्रकार ठीक नहीं उतर सका है। उत्प्रेक्षा अलंकार केशव के अनुसार वहाँ होता है जहाँ किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु का अनुमान या आरोप कर लिया जाय।† यह परिभाषा गलत न होते हुए भी सुस्पष्ट और विशिष्ट नहीं है। प्रायः सभी उपमामूलक अलंकारों में एक वस्तु पर अन्य वस्तु का आरोप अथवा अनुमान किया जाता है, फिर इस परिभाषा में वाचक पद आदि का भी कोई उल्लेख नहीं। उदाहरण भी कुछ सुन्दर नहीं बन पड़े हैं, यों अपने काव्य में केशवदास जी ने उत्तम-से-उत्तम उत्प्रेक्षा तथा अन्य अलंकारों के प्रयोग प्रस्तुत किये हैं।

कविप्रिया के दसवें प्रभाव में केवल आक्षेप अलंकार का विवेचन हुआ है। विशिष्टालंकारों का विवेचन दण्डी के आधार पर ही केशव ने किया है। दण्डी आक्षेप का लक्षण इस प्रकार देते हैं—प्रतिषेधोक्तिराक्षेपः। इसके ऊपरी अर्थ को ही केशव लेकर चले हैं। सच तो यह है कि आक्षेप अलंकार में वास्तविक निषेध नहीं रहता, निषेध का आभास मात्र होता है क्योंकि "वास्तविक निषेध में अलंकार की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक वैचित्र्य का अभाव रहता है। परंतु केशव ने वास्तविक निषेध को ही आक्षेप समझ लिया था जैसा कि उनके भूतकाल प्रतिषेध के उदाहरण से प्रतीत होता है—

---

* सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत अलंकार मंजरी पृ. २४३

†केशव औरै वस्तु में और कीजिए तर्क।

बरज्यों हौं हरि त्रिपुर हर, बारक करि भ्रूभंग ।
सुनो मदन मोहनि, मदन ह्वै ही गयो अनंग ॥

यहाँ पर 'वरज्यो' के द्वारा व्यक्त होने वाला निषेध वास्तविक है जो अलंकार के लिए आवश्यक नही।"* इस प्रकार से केशव आक्षेप अलंकार को भी ऊपर-ऊपर ही समझ सके हैं, उसके प्राण-तत्व तक नहीं पहुँचे हैं। आक्षेप के एक भेद धर्माक्षेप मे दण्डी ने धर्म से जहाँ कोमलता आदि गुणों का अभिप्राय लिया है, वहीं केशव ने पातिव्रत धर्म आदि अर्थ समझा है। दण्डी ने आक्षेप के चौबीस भेद किये, केशव ने बारह—भूत, भावी, वर्तमान, प्रेम, अधीरज, धीरज, संशय, मरण, आशिष, धरम, उपाय, शिक्षा। शिक्षाक्षेप के बारह उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें बारह महीनों की ऋतु का वर्णन कराकर नायिका द्वारा नायक को विदेश न जाने का उपदेश दिलाया गया है। परवर्ती आचार्यों ने आक्षेप के तीन ही भेद किये हैं।

ग्यारहवें प्रभाव में क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्ज, रसवत्, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, अपन्हुति अलंकारों का परिचय कराया गया है। केशव के क्रम और गणना अलंकारो की परिभाषा स्पष्ट नहीं है।† उनके क्रम अलंकार के उदाहरण एकावली‡ (शृंखला) अलंकार के उदाहरण हो गये हैं। उदाहरण स्वरूप देखिए—

सोभित सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधुन साधित दीह दया न दियैं जिय माहीं ॥

---

*कृष्णशकरशुक्ल कृत केशव की काव्यकला—पृ० १६३।

†आदि अंत भरि वरणिए, सो क्रम केशवदास।
गणना गणना सों कहत जिनके बुद्धि प्रकास॥

‡जहाँ पदों का ग्रहण और त्याग, पुनः ग्रहण और त्याग के ढग से सब पद जंजीर की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े हों।—लाला भगवानदीन कृत अलंकार मंजूषा।

यह अवश्य है कि गद्यशैली मे लिखित परिभाषा को स्पष्टता उपर्युक्त दोहे में उतनी नहीं आ सकी है। इसका उदाहरण भी ठीक है—

सखि सोहत गोपसभा महँ गोविन्द बैठे हुते दुति को धरि कै।
जनु केशव पूरण चंद लसैं चित चारु चकोरन को हरि कै॥
तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरि कै।
कहु काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करि कै॥

लेश अलंकार का लक्षण बिल्कुल अस्पष्ट है। केशव लिखते हैं —'चतुराई के लेश ते चतुर न समझै लेश' जब कि 'दोष में गुण अथवा गुण में दोश की कल्पना किये जाने को लेश अलंकार कहते हैं'।* इस प्रकार लेश का विवेचन सर्वथा भ्रामक है। निदर्शना की परिभाषा साधारणतया ठीक है किन्तु किसी काव्या-भ्यासी का काम उससे नहीं चल सकता, अलंकार का ठीक-ठीक स्वरूप बोध नहीं हो पाता। वास्तव में निदर्शना में दृष्टान्त रूप में अपना कार्य उपमा द्वारा दिखाया जाता है। दृष्टान्त अलंकार में भी उपमेय और उपमान वाक्यों का परस्पर में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। पर दृष्टान्त में वे दोनों वाक्य निरपेक्ष होते हैं, केवल उपमान के वाक्यार्थ में दृष्टान्त दिखाकर उपमेय के वाक्यार्थ का निश्चय कराया जाता है और निदर्शना में उपमेय और उपमान वाक्य परस्पर में सापेक्ष होते हैं अर्थात् उपमेय के वाक्यार्थ में उपमान के वाक्यार्थ का आरोप किये जाने के कारण दोनों का परस्पर सम्बंध रहता है।† केशव की निदर्शना इस प्रकार है—

कौनहु एक प्रकार तें सत अरु असत समान।
करिये प्रगट, निदर्शना समुझत सकल सुजान॥

'ऊर्ज' की परिभाषा वे इस प्रकार देते हैं—"तजै न निज हंकार को यद्यपि घटै सहाय'। यह दण्डी के ऊर्जस्वि का ही रूपान्तर है। इस अलंकार की चर्चा हिन्दी के काव्यशास्त्रियों ने अपने अलंकार ग्रथों में नहीं की है। संस्कृत काव्य-

*देखिये सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत अलंकार मंजरी
†सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

शास्त्र में इसे कोई महत्व नहीं प्राप्त हुआ है। जिस अलंकार से रस का पोषण होता है उसे केशव 'रसवत' अलंकार मानते हैं—'रसमय होय सु जानिये रसवत केशवदास'; ये अलंकार किसी भी रस का पोषण कर सकते हैं। वास्तव में 'रसवत' में अलंकारिता नाम मात्र को है, यह गुणीभूत व्यंग्य का विषय है। इसका संबंध रसभाव आदि से है। केशव ने ६ रसवत अलंकारों के उदाहरण भी जुटाए हैं। अर्थान्तरन्यास की परिभाषा वे इस प्रकार देते हैं—'और जानिये अर्थ जहँ औरै वस्तु बखानि' तथा उसके युक्त, अयुक्त, अयुक्त-युक्त और युक्त-अयुक्त नामक चार भेद प्रस्तुत करते हैं। किन्तु इस अलंकार की मान्य परिभाषा इस प्रकार है—"सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से समर्थन किये जाने को अर्थान्तरन्यास कहते हैं।" केशव का अर्थान्तरन्यास कुछ और ही है। व्यतिरेक की जो परिभाषा केशव ने दी है वह ठीक उसी प्रकार से आगे ग्रहीत नहीं हुई है, वे तो कहते हैं—

तामैं आनै भेद कछु होय जु वस्तु समान।

भूषन ने भी बहुत कुछ ऐसी ही परिभाषा दी है—

सम छबिवान दुहून में जहँ बरनत बढि एक। *

अब इसकी यह परिभाषा स्वीकृत हुई है—

उपमा तें उपमेय में अधिक कछू गुन होय।†

केशव ने इसके दो ही भेद किये हैं युक्त और सहज, जिनके लक्षण देना भी वे भूल गए हैं। किन्तु आचार्यों ने व्यतिरेक के चौबीस भेद तक किये हैं। ‡ अपह्नुति बहुत कुछ इसी रूप में आज भी मानी जाती है जिस रूप में केशव ने स्वीकार किया था। केशव ने कहा है—

---

* शिवराज भूषण

† अलंकार मंजूषा—लाला भगवानदीन

‡ देखिये सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत अलंकार मंजरी

मन की बात दुराय मुख और कहिए बात।

भूषण ने भी इसी रूप में माना है—'आन बात आरोपिये साँची बात दुराय' (शिवराज भूषण) तथा पोद्दार जी ने भी उपमेय के निषेध और उपमान के स्थापन में अपह्नुति माना है। इस प्रकार इस अलंकार के संबंध मे कोई मौलिक वैमत्य नहीं है, उदाहरण भी केशव का ठीक है। उन्होंने इसके उपभेद नहीं किये हैं यद्यपि परवर्ती आचार्यों ने इसके कई भेदों का निरूपण किया है।

बारहवें प्रभाव में केशव ने उक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिंदा, अमित, पर्यायोक्ति और युक्त अलंकारों का विवेचन किया है। उक्ति अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—'बुद्धि बिवेक अनेक विधि उपजत तर्क अपार' अर्थात् बुद्धि और विवेक से सुसिद्ध तर्क में उक्ति अलंकार होता है। इसके केशव ने पाँच भेद किये हैं—वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति और सहोक्ति। उक्ति को आचार्यों ने स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है। केशव ने इसके जो पाँच भेद किए हैं उनमें से वक्रोक्ति, विशेषोक्ति और सहोक्ति तो प्रायः इसी रूप में आज भी प्रचलित हैं, अन्योक्ति को केशव ने अलंकारों के बीच गिना है, अनेक आचार्यों ने इसे अलंकारों के बीच स्थान नहीं दिया है। व्यधिकरणोक्ति अवश्य नया अलंकार है किन्तु उदाहरण से यह असंगति जान पड़ता है—

आलिंगन अंग अंग पीड़ियत पद्मिनी के
सौतिन के अंग अंग पीड़नि पिरात हैं।

केशव का 'व्यागस्तुति' और 'व्याजनिन्दा' का विवेचन प्रचलित रूप में ही है, 'अमित' अलंकार उनका अपना आविष्कार है। यह 'उनकी सृष्टि का नमूना प्रतीत होता है'।* इसका लक्षण उन्होंने इस प्रकार दिया है—

जहाँ साधनै भोगई साधक की शुभ सिद्धि

अर्थात् साधक द्वारा प्राप्त की जाने वाली सिद्धि को साधक ही जहाँ पा लेता है वहाँ अमित अलंकार होता है। उक्त लक्षण उनके द्वारा प्रस्तुत किए हुए

* हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव—डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' पृ. २५१ देखिए

उदाहरण पर ठीक-ठीक चरितार्थ नहीं हो पाता, यह इस नवीन अलकार के साथ बहुत बड़ा दोष रह गया है। 'पर्यायोक्ति' का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

कौनहु एक अदृष्ट ते, अन ही किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय॥

यह लक्षण आचार्यों द्वारा प्रस्तुत 'प्रहर्षण' का हो गया है। देखिए—

प्रहर्षण का लक्षण—जतन बिना ही होता है जहाँ चित चाही बात।* इस प्रकार पर्यायोक्ति का निरूपण केशव ने जो किया है वह भ्रामक है, वास्तव में अभीष्ट अर्थ का प्रकारान्तर से कथन किये जाने को 'पर्यायोक्ति' कहते हैं। केशव का 'युक्त' अलंकार का लक्षण उन्हीं के 'स्वाभावोक्ति' से मिलता हुआ है। उनके दोनों अलंकारों के लक्षण देखिए—

जैसो जाको रूप बल, कहिए ताही रूप।
ताको कविकुलयुक्त कहि, वरणन विविध सरूप॥ (युक्त)
जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब कहि वरणत कविराज॥ (स्वभावोक्ति)

इस प्रकार युक्त अलंकार का निरूपण भी भ्रमपूर्ण ही कहा जायगा।

तेरहवें प्रभाव में समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका और परिवृत्त अलंकारों का विवेचन किया गया है। केशव ने 'समाहित' अलकार की परिभाषा इस प्रकार दी है—'होत न क्योंहू होय जहँ दैवयोग ते काज' यह अलंकार दण्डी के आधार पर ग्रहीत है। इसी को मम्मट और विश्वनाथ ने 'समाधि' करके माना है। सुसिद्ध, प्रसिद्ध और विपरीत केशवदास जी के स्वनिर्मित नवीन अलकार हैं जो साधन और सिद्धि पर आधारित हैं। जहाँ साधना कोई करे और सिद्धि का उपभोग कोई और वहाँ सुसिद्ध, जहाँ साधना एक व्यक्ति करे सिद्धि का भोग अनेक व्यक्ति करें वहाँ प्रसिद्ध तथा जहाँ सिद्धि में साधन ही बाधा पहुँचावे वहां विपरीत अलंकार होता है। अलकार निरूपण में यह केशव

* अलंकार मञ्जूषा—ला० भगवानदीन

की अपनी उद्भावना है। इन में सुसिद्ध अलंकार तो असगति के समीप जान पड़ता है। केशव के ये अलकार आगे नहीं चल सके। रूपक मे केशवदास जी के अनुसार उपमेय और उपमान की एकरूपता हुआ करती है। इसके अनेक भेद होते हैं ऐसा जानते हुए भी केशवदास जी ने केवल तीन मुख्य भेदो का वर्णन करना उचित समझा—अद्भुत रूपक, विरुद्ध रूपक और रूपक, किन्तु उनके लक्षण रूपक की ठीक व्याख्या नहीं कर सके तथा उपभेदों का निर्धारण भी निराधार सा प्रतीत होता है। विरुद्ध रूपक का उदाहरण तो रूपकातिशयोक्ति का उदाहरण हो गया है—

लक्षण

जहँ कहिए अनमिल कछू सुमिल सकल विधि अर्थ।
तेहि विरुद्ध रुपक कहैं केशव बुद्धि समर्थ॥

उदाहरण

सोने की एक लता तुलसी वन क्यों वरणौं सुनि बुद्धि सकैछ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्री फल से व्वै॥
फूलि सरोज रह्यौ तिन ऊपर रूप निरूपन चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै॥

दीपक अलंकार वहाँ होता है जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक धर्म होना कहा जासकता है। केशव इसकी परिभाषा इस प्रकार देते हैं—'वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को वरनहु करि इक ठौर' तथा इसके अनेक भेदों का होना स्वीकार करते हुए भी वे केवल दो भेदों—मणिदीपक और मालादीपक का निरूपण करते हैं। ये विवेचन और विभाजन आचार्य दण्डी के आधार पर हैं; 'मणि' और 'माला' नामक भेद क्रमशः दण्डी के 'जाति' और 'माला' से मिलते हैं। चमत्कार-पूर्ण काव्य को काव्य मानने के कारण केशवदास जी ने 'प्रहेलिका' को भी अलंकार माना है। दण्डी ने इसे 'क्रीड़ागोष्ठी' के लिए उपयुक्त कहा है। इसका लक्षण देखिए—'बरनिय वस्तु दुराय जहँ कौनहुँ एक प्रकार' तथा उदाहरण भी—

सब सुख चाही माँगिबो जो पियएकहि बार ।
चंद गहैं जहँ गहु को जैयो तेहि दरबार ॥
ऐसी मूरि दिखाउ सखि जिय जानत सब कोइ।
पीठि लगावत जासु रस छाती सीरी होइ ॥

किंतु रसोत्कर्ष में सहायक न होने के कारण इसे परवर्ती आचार्यों ने अलंकार नहीं माना है—

रसस्यपरिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका ।

(साहित्य दर्पण)

परिवृत्त अलंकार केशव ने वहाँ माना है जहाँ किया कुछ जाता है और हो कुछ जाता है—'जहाँ करत कछु और ही उपजि परत कछु और।' उदाहरण देखिए—

(क) हरि त्यों टुक दीठि पसारत ही अगुँरीन पसारन लोक लगे ।
(ख) ऐसो कछू यह काल है जाको भलो करिये सु बुरो करि मानें ॥

अन्य आचार्यों ने परिवृत्त अलंकार में पदार्थों का सम और असम के साथ विनिमय होना बतलाया है।

चौदहवें प्रभाव में उपमा अलंकार का उसके २२ भेदों सहित निरूपण किया गया है। इनमें से १५ भेद तो दण्डी के काव्यादर्श से ही लिये गए हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—संशयोपमा, हेतूपमा, अभूतोपमा, अद्भुतोपमा, विक्रियोपमा, मोहोपमा, नियमोपमा, अनिश्चयोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, श्लेषोपमा, धर्मोपमा, निर्णयोपमा, असमाप्तोपमा, विरोधोपमा और मालोपमा। ५ भेद ऐसे हैं जिनमें दण्डी कृत उपमा भेदों से नाम साम्य तो अवश्य नहीं है किन्तु लक्षण एक से ही है। केशव का दूषणोपमा दण्डी के निन्दोपमा से, भूषणोपमा प्रशंसोपमा से, गुणाधिकोपमा प्रतिषेधोपमा से, लाक्षणिकोपमा चटूपमा से और परस्परोपमा अनन्वोपमा से मिलता है। उपमा के शेष दो भेद संकीर्णोपमा और विपरीतोपमा दण्डी के किसी भेद से नहीं मिलते, इन्हें उपमा के भेद के रूप में माना भी नहीं जा सकता। दण्डी ने उपमा के ३२ भेद दिये हैं, केशव ने २२।

यह स्पष्ट ही है कि अर्थालकारों मे केशवदास जी ने उपमा को ही प्रधान अथवा मूल अलंकार माना है, शेष उपमा के प्रपंच मात्र हैं। अनेक स्वतंत्र कहे जाने वाले अलकारों को इसी से केशव ने उपमा के भेद रूप मे ही स्वीकार किया है। उनके मोहोपमा मे भ्रान्तिमान, अद्‌भुतोपमा में अतिशयोक्ति, सशयोपमा में सन्देह, प्रतिषेधोपमा मे व्यतिरेक, निश्चयोपमा में निश्चय और लाक्षणिकोपमा में विशेषोक्ति की छाया मिलती है। इस प्रकार उपमा अलकार का विवेचन यथेष्ट पूर्ण और सुन्दर बन पडा है। उसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

रूपशील गुण होय सम, जो क्योंहू अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि केशव बहुत प्रकार॥

पन्द्रहवे प्रभाव में यमक का विशद विवेचन किया गया है। केशव के अनुसार यमक वहाँ होता है जहाँ एक से पदों के अनेक अर्थ निकलते हैं। यमक के विभेद केशव ने कई आधार लेकर किये हैं, एक तो शब्दक्रम के आधार पर जिसके अनुसार वह दो प्रकार का हो जाता है (१) अव्यपेत—जहाँ पदों में अन्तर न हो (शब्द सटे हुए आवें) जैसे 'सजनी सज नीरद निरखि' (२) सव्यपेत—जहाँ पदों में अन्तर हो (बीच में अन्य पद आ जाये) जैसे नर बानर को साथ। सरलता और क्लिष्टता के आधार पर सुखकर और दुखकर भेद किये गए हैं, फिर छन्दगत चरण के आधार पर आदि पाद, द्वितीय पाद, तृतीय पाद, चतुर्थपाद, फिर पहले दूसरे, पहले तीसरे, पहले चौथे, दूसरे तीसरे, दूसरे चौथे, तीसरे चौथे, फिर प्रथम पाद रहित, द्वितीय पाद रहित आदि अनेकानेक भेद किये हैं। इस विशद वर्गीकरण का आधार भी दण्डीकृत वर्गीकरण ही है। इस प्रकार का वर्गीकरण आगे के लेखकों में नही मिलता।

सोलहवें प्रभाव मे चित्रालंकार वर्णन है। केशवदास जी कहते हैं कि चित्रालंकार का विषय समुद्रवत् अगाध और अपार है, मैं तो उसकी एक बूँद के एक कण मात्र का वर्णन कर रहा हूँ। इस शुद्ध चमत्कारपूर्ण चित्ररचना में केशव का मन बहुत रमा प्रतीत होता है। इसमे एक प्रकार का मस्तिष्क का व्यायाम होता है तथा यह रस रहित होता है। इसका प्रयोग करते समय यति, अन्ध, बधिर,

अनल अनिल जल मलिन तें विकट खलन तें नित्त।
कविप्रिया को रक्षियो कविप्रिया ज्यों मित्त ॥

यह कृति केशवदास जी को अपनी भार्या के ही समान प्रिय रही इसी से इस मे उन्होंने १६ प्रभाव रक्खे हैं जो नायिका के १६ शृंगारो के समान हैं।

इस प्रकार केशव की कविप्रिया हिन्दी साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यही वह कृति है जिसने कितने ही समसामयिक एवं परवर्ती कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया तथा कोरी काव्य रचना से काव्य शास्त्र के अनुशीलन और निर्माण की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। देशकाल की आवश्यकता के अनुसार साहित्य की प्रगति पर दृष्टि रखते हुए केशवदास जी रीति ग्रंथों की रचना में लगे तथा साहित्य क्षेत्र की आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति का उन्होंने पूरा प्रयत्न किया।

केशव ने आधार रूप में संस्कृत के प्राचीन आचार्यों दण्डी (काव्यादर्श), केशवमिश्र (अलंकार शेखर) राजानक रुय्यक (अलंकार सूत्र), अमरचन्द्र (काव्य-कल्पलता वृत्ति) आदि द्वारा किये गए अलंकार निरूपण को ग्रहण किया।* कवि प्रिया का अलंकार विवेचन जहाँ अनेक स्थलों पर दोषपूर्ण है वहीं उसमें अनेक विशेषताएँ भी हैं—"अलंकार विवेचन के क्षेत्र में सामान्य और विशिष्ट वर्गों मे अलंकार का विभाजन केशव की निजी कल्पना है। सामान्य अलंकार को फिर केशव ने चार वर्गों में विभाजित किया है—वर्णालंकार, वर्ण्यालंकार, भूमिश्री वर्णन तथा राज्यश्री वर्णन। विशिष्ट अलंकारों के अंतर्गत शब्द-अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले दोनों प्रकार के प्रमुख अलंकारों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार का विभाजन संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं किया है। सामान्य अलकारों का विवेचन प्रमुख रूप से 'अलकार शेखर' तथा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' ग्रंथो के आधार पर किया गया है किन्तु स्थल-स्थल पर केशव ने अपनी मौलिकता का

---

*कविप्रिया का चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ और आठवाँ प्रभाव काव्य-कल्पलतावृत्ति तथा अलकार शेखर पर आधारित है तथा तीसरा और नवे से लेकर १६ वें प्रभाव तक का निरूपण काव्यदर्श पर।

न था वरन् कविशिक्षा तथा अलकार विषय से अनभिज्ञ पाठकों को काव्याभ्यास में सहायता पहुँचाने वाले एक परिचयात्मक ग्रथ के अभाव की पूर्ति करना। इस कार्य में केशवदास जी कृतकार्य भी हुए क्योंकि बहुत समय तक कविप्रिया काव्याभ्यासियों तथा उदीयमान कवियों का कण्ठहार बनी रही। हाँ जिन कवियों ने अलकार ग्रंथ लिखे उन्होंने अवश्य केशव के पथ पर चलते हुए भी आदर्श रूप में चन्द्रालोक * और कुवलयानन्द † को ही स्वीकार किया।

संस्कृत साहित्य मे अलकारों के सबध में जो प्राचीन धारणा रही उसमें धीरे-धीरे बहुत परिवर्तन हो चला। यहाँ तक कि दण्डी और विश्वनाथ द्वारा विवेचित अनेक अलंकारों के लक्षणों में मौलिक अन्तर पड गया। परिणामस्वरूप साहित्यदर्पण, चन्द्रालोक, कुवलयानन्द के आधार पर लिखे गए हिन्दी के अलकार ग्रथों मे प्राप्त अलकार निरूपण काव्यादर्श, अलकार शेखर और काव्य-कल्पलतावृत्ति पर आधारित ग्रथों जैसे कविप्रिया में किये गए अलकार विवेचन से सर्वथा पृथक हो गया जैसा कि विशिष्टालंकारों की उपर्युक्त विवेचनाओ से स्पष्ट है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि केशवदास जी अलकार को काव्य की आत्मा समझने वाले अलकारवादी कवि थे। उन पर सस्कृत साहित्त के प्राचीन काव्यशास्त्रियो भामह, दण्डी, उद्भट आदि का प्रभाव पडा है न कि परवर्ती आचार्यों आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि का जो ध्वनि अथवा रस को काव्य की आत्मा मानते थे। काव्यशास्त्र पर विशद रूप से विवेचन करने वाले वे हिन्दी के सर्वप्रथम आचार्य हैं। वे आचार्य और कवि दोनों रूपों में समस्त रीति काल में समाहृत रहे किन्तु उनका आचार्यत्व रसिकप्रिया और कविप्रिया मे उस रूप मे नहीं प्रकट हुआ है जैसा कि होना चाहिए था। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होंने गंभीर शास्त्रीय मीमासा का दृष्टिकोण लेकर रसिकप्रिया और कविप्रिया का प्रणयन नहीं किया। नवीन काव्याभ्यासियों (महाराज इन्द्रजीतसिंह

---

* जयदेव कृत

† अप्पय दीक्षित रचित

और प्रवीणराय इत्यादिकों) को अलंकार रस आदि काव्यांगों का सामान्य ज्ञान कराने के लिये ये ग्रंथ लिखे गए थे, कोई सूक्ष्मता और गहराई के साथ शास्त्र चिन्तन प्रस्तुत करना उनका लक्ष्य न था । काव्यशास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे इसमें सन्देह नहीं किन्तु शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाशन की अपेक्षा कविप्रिया प्रदर्शन उन्हें अधिक प्रिय था । यही कारण है कि ध्वनि, रस, अलंकार, शब्दशक्ति, छन्द, गुण, वृत्ति आदि का जैसा प्रयोगिक स्वरूप उनके काव्य में परिलक्षित होता है वैसी ही मार्मिक मीमासा का उनकी रीतिकृतियों में अभाव हैं । उन्होंने कविप्रिया प्रणयन का उद्देश्य सपष्ट लिखा है—

समुझै बाला बालकहूँ, वर्णन पन्थ अगाध ।
कविप्रिया केशवकरी, छमिवो कवि अपराध ॥

'जहाँ संस्कृत मे काव्य की ऐसी सुन्दर और सूक्ष्म मीमासा उपलब्ध है वहाँ उस विषय पर कुछ लिखना सर्वथा अनुचित ही है किन्तु उस गहन और दुर्गम विषय को, काव्य के कठिन और अगम पन्थ को साधारण बालक,बालिकाओं के लिए जो काव्यानुशीलन अथवा काव्यरचना में रुचि रखते हैं सुगम करने के विचार से मैंने यह ग्रंथ प्रस्तुत किया है । कृपा कर विज्ञ कविजन मेरे इस अपराध के लिए मुझे क्षमा करें ।' इसलिए केशवदास जी से गंभीर शास्त्रीय विवेचन की आशा करना उनके प्रति अन्याय करना है । इतना अवश्य है कि जिस उद्देश्य से उन्होंने यह ग्रंथ लिखा उस में वे पूर्णतया सफल रहे क्योंकि उनके बाद लगभग २०० वर्षों तक उनकी कविप्रिया और रसिकप्रिया का कवि समाज में बहुत ही आदर रहा । भले ही उनकी काव्यधारणा परवर्ती रीतिकारों को अमान्य रही हो किन्तु उनके ग्रंथ का प्रचलन इतना रहा कि 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' पढे बिना हिन्दी का कोई भी कवि अथवा रीतिकार अपना नवीन ग्रंथ लिखने का साहस न करता था । स्वतः चिन्तामणि ने, जो केशव से भिन्न मार्गानुयायी थे, अपनी 'शृंगार मंजरी' में आधारभूत ग्रंथ के रूप में संस्कृत ग्रंथों के साथ केशव के ग्रंथ का भी आदरपूर्वक उल्लेख किया है । इसलिए केशवदास का

महत्व संस्कृत अलंकारशास्त्र के आधार पर हिन्दी में रीतिग्रंथों की परंपरा का प्रवर्तन करने में है। उन्होंने सर्वप्रथम काव्यशास्त्र के लगभग सभी अंगो पर विचार किया है। अनेक स्थलों पर उनकी यत्किंचित मौलिकता भी देखने में आती है।

रस-निर्णय की पृष्ठभूमि

शृंगार रस राज है—काव्य में नौ रस सभी काव्याचार्यों को मान्य रहे हैं परन्तु इन नौ रसों में शृंगार का प्रभाव और महत्व विशेष है। रस-सिद्धान्त के प्रथम व्याख्याता भरत मुनि के अनुसार इस जगत की वे समस्त वस्तुएँ जो पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है—शृंगार रस के अन्तर्गत आती हैं—

यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा
तच्छृङ्गारेणोपमीयते।

यह शृंगार की बड़ी पुनीत कल्पना है। महर्षि वेदव्यास ने अग्निपुराण में शृंगार को ही आदि रस सिद्ध किया है तथा उसी की महत्ता एवं प्रधानता प्रतिपादित की है। वे कहते हैं—"परब्रह्म परमात्मा के 'अहंकार' से 'ममता' और 'ममता' के रूपान्तर से शृंगार रस की उत्पत्ति हुई है; अतः शृंगार आदि रस है अन्य रस उसके बाद उत्पन्न हुए। शृंगार ही सृष्टि, सृजन का मूल एवं विश्व प्रपंच का आधार है।" कुछ आचार्यों ने करुण तथा वीर को सभी रसों के मूल में मानते हुए इन्हें रसराज की संज्ञा देने की चेष्टा की किन्तु अधिकाश आचार्यों ने शृंगार को ही रसराज के आसन पर प्रतिष्ठित किया। शृंगार का स्थायीभाव है 'रति'; लौकिक दृष्टि से बिना 'रति' के कोई भी कार्य सम्पन्न नही हो सकता, इसी कारण शृंगार रस सभी रसों में प्रधान है। शृंगार रस के देवता विष्णु हैं तथा त्रिदेवों मे वे सर्वाग्रणी हैं। अतः धार्मिक दृष्टि से भी शृंगार का अद्वितीय महत्व स्थापित हो जाता है। इसके अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टि से भी यदि विचार किया जाय तो अवगत होता है कि शृंगार रस अन्य रसों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है, सभी संचारी भावों का इसमें निर्वाह हो सकता है। किन्हीं-किन्ही आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि शेष सभी रस शृंगार में ही अन्तर्भुक्त किये जा सकते हैं। हिन्दी में केशव, देव आदि आचार्य भी इसी मान्यता को लेकर चलते हैं। देव का मत इस प्रकार है—

निर्मल स्याम सिंगार हरि देव अकास अनंत।
उड़ि उड़ि राग ज्यों और रस बिवस न पावत अंत॥
भाव सहित सिंगार में नवरस झलक अजत्न।
ज्यों कंकन-मणि कनक को ताही में नवरत्न॥
(भवानी विलास)

केशव भी कहते हैं—

नव हू रस को भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि नाइक है सिंगार॥
(रसिकप्रिया)

उन्होंने अन्य आठ रसों को शृंगारान्तर्गत ही दिखलाया भी है। वास्तव में तन्मयता की चरम सीमा शृंगार चित्रण में ही सब ने अधिक प्राप्त भी होती है। अत. शृंगार रस के रसराजत्व मे कोई विशेष आपत्ति न उठनी चाहिए।

नायिका भेद का महत्व—'नायिका-भेद' का सम्बन्ध कविता से उतना नहीं जितना अभिनय से। इस विषय का आदिस्रोत भरत मुनि का 'नाट्य-शास्त्र' है। तदनन्तर इसका उल्लेख धनञ्जय कृत 'दशरूपक' में मिलता है। इस प्रकार नायिका भेद के प्रकरण का अर्थ ही अभिनय ग्रन्थों से होता है। आगे चलकर रस-सिद्धान्त केवल दृश्य काव्य का ही विषय न रह गया वरन् श्रव्य काव्य तथा विशेषतया काव्य साहित्य का प्राण बन बैठा है। रस का विचार रखते हुए भी कविता में नायिका भेद के विवेचन का असाधारण महत्व नहीं कहा जा सकता। इसीलिए सस्कृत में नायिका के भेद-प्रभेदों के विवेचन को विशेष विस्तार एवं महत्व नहीं दिया गया, परन्तु ब्रजभाषा के कवियों एवं आचार्यों ने इस विषय के वर्णन में संस्कृत आचार्यों को पीछे छोड़ दिया। यद्यपि यह अवश्य है कि वे नायिका भेद की आधार शिला संस्कृत से ही ले आए थे।

नायक और नायिका शृंगार रस के आलंबन होते हैं, नायिकाओं में आकर्षण अधिक होता है इसी से शृंगार के अन्तर्गत संयोग और वियोग दोनों की अनेकानेक परिस्थितियों मे नायिकाओं की अनगिनत अन्तर्वृत्तियों के निरीक्षण एवं चित्रण

में संस्कृत तथा उससे भी अधिक हिन्दी के कवियों का मन रमा। इसी कारण रीति साहित्य के कठोर से कठोर आलोचक को भी यह बात मुक्तकंठ में स्वीकार करनी पडी है कि लक्षणों पर घटित होने वाले जितने अभिराम उदाहरणों की रचना ब्रजभाषा में हो गई है उतनी संस्कृत साहित्य में खोजने पर भी न मिलेगी। "ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी। अलकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा। इससे शृंगार रस के अन्तर्गत बहुत सुन्दर मुक्तक रचना हिन्दी में हुई। इस रस का इतना अधिक विस्तार हिन्दी साहित्य में हुआ कि इसके एक-एक अंग को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थ रचे गए। इस रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका भेद के भीतर दिखाया। रस ग्रन्थ वास्तव में नायिका भेद के ही ग्रंथ है जिनमें और दूसरे रस पीछे से संक्षेप में चलते कर दिए गए हैं।"* (पं० रामचन्द्र शुक्ल) ब्रजभाषा में कुछ ऐसी परिपाटी चल पडी कि कवियो ने नायिकाओं के असख्य भेदोपभेद किये तथा नारी मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म विकारों के प्रदर्शन की ओर वे प्रवृत्त हुए। इस कार्य में ये कवि अपने संपूर्ण मनोयोग के साथ लगे तथा उसे सुसंपन्न करने में उन्होंने अपनी प्रतिभा, काव्य-कुशलता, कल्पनाशक्ति तथा अन्य समस्त अपेक्षित गुणों का यथासंभव नियोजन किया। परिणामस्वरूप साहित्य का विषय-क्षेत्र तो विस्तृत न होने पाया किन्तु जो कुछ हुआ वह इतना रमणीय और कलापूर्ण था कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

नायिका भेद का औचित्य और उसकी उपयोगिता—नायिका भेद सम्बन्धी जो काव्य हिन्दी मे उपलब्ध है उसकी निन्दा एवं विगर्हणा अनेक हिन्दी के विद्वानों ने को है, नैतिक आधार पर इस प्रकार के साहित्य को पतित, हेय और अधोगामी बतलाया है तथा समाज पर पडने वाले उसके कुप्रभाव की ओर

*पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने हिन्दी साहित्य की भूमिका में लिखते हैं—अपने आप में स्वतंत्र फुटकल पद्यों की ऐसी भरमार समूचे भारतीय साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिली है।

संकेत दिया है। जहाँ तक काव्य के अन्तर्गत नैतिकता का प्रश्न है अभी यह समस्या निर्विवाद नहीं हो सकी है। 'कला—कला के लिए है' ऐसा विचार रखने वाले मीमांसकों ने श्लील और अश्लील का भेद नहीं रक्खा है, सौन्दर्य का विधान मात्र जिसका उद्देश्य है उसके लिए मर्यादा अथवा औचित्य का महत्त्व विशेष नहीं रहा है। सौन्दर्योपासकों एवं कला-पारखियों में खजुराहो की शिल्प कला के संबन्ध में कभी भी दो मत नहीं रहे हैं। रीतिकाल में काव्य का कलापक्ष ही यदि सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ अवश्य माना जाता रहा। इसलिए नायिकाओं के ही रूप, गुण और स्वभाव तथा उनके सम्बन्ध में विविध प्रसंगों की कल्पना करते हुए पूरे एक युग-के-युग ने अपनी समस्त काव्य-प्रतिभा केवल नायिकाओं के ही सौन्दर्याङ्कन में नियोजित की है। कला के काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान देने वाले समालोचक आज भी कबीर, दादू, नानक, रैदास आदि संतों को कवियों की कोटि से अलग कर देते हैं क्योंकि वे कलापक्ष और काव्य में बहुत न्यून हैं। यह अवश्य है कि नायिकाभेद सम्बन्धी वह काव्य जिसमें सौन्दर्य का स्थान कुरुचिपूर्ण प्रसंगों ने ले लिया है, हीन ही कहा जायगा, किन्तु संयत, कल्पनापूर्ण, सौन्दर्य विधायक और अतिव्यंजक नायिकाभेद विवेचन कदापि काव्यकोटि से बाहर नहीं किया जा सकता। नायिकाभेद के सम्बन्ध में डा० रामप्रसाद त्रिपाठी का मत इस प्रकार है—स्त्री-पुरुष की समस्या जीवन की सबसे बड़ी कड़ी पहेली है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसी धुरे पर चक्कर खा रहे हैं। पुरुष और प्रकृति की यह लीला नित्य और नूतन है। इसके रहस्य को समझ लेने से जीवन की और मनुष्य की सामाजिक समस्या हल हो जाती है। उस साहित्य से हमारे समाज को हानि पहुँचने की कल्पना मिथ्या और अपवादात्मक है।* इस सम्बन्ध में स्व० पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का कथन है—जहाँ सती साध्वी कुल-ललनाएँ हैं वहीं प्रवंचनामयी वरवधूटियाँ भी हैं, जहाँ कोमल स्वभावा सरल बालिकाएँ हैं वहाँ कटुवादिनी, गर्विणी, मानवती नायिकाएँ भी हैं, जहाँ पति की परछाईं से भीत होने वाली मुग्धाएँ हैं वहीं अनेक कला कुशला प्रौढ़ाएँ भी हैं। कहीं स्वकीया, कहीं परकीया,

*देखिए प्रभुदयालु मीतल कृत 'ब्रजसाहित्य में नायिकाभेद' की भूमिका।

कहीं सामान्या। इसी प्रकार जब तक सब प्रकार के पुरुषों से ललनाएँ अभिज्ञ न होंगी तब तक क्या पद-पद पर अनेक पतन की संभावना न होगी ? यह अनुभव चाहे पुस्तकों द्वारा हो, चाहे अन्य साधनों से। पुस्तकें अनेक दृष्टियों से सर्वोत्तम माध्यम हैं। स्त्री-पुरुषों की चालबाजियाँ, कुटिलताएँ, सुखावसर, वियोग आदि विषयक बातों का सम्यक् ज्ञान इन पुस्तकों से ही हो सकता है। साहित्यकारों ने स्वयं यह बतलाया है कि कौन-कौन विषय अश्लील और जुगुप्साजनक हैं। यदि उनकी दृष्टि मे नायिकाभेद अमर्यादित और जुगुप्सामय होता तो कभी वे अपने ग्रन्थो में उसे स्थान न देते और न उसे शृंगार रस मानते। प्रायः कहा जाता है कि गणिकाओं का वर्णन करके नायिका विभेद के ग्रन्थो में अनर्थ कर दिया गया है परन्तु छन्द के प्रलोभन में सतर्कीकरण की निहित शिक्षा को आलोचक भूल जाते हैं। जहाँ उत्तमाएँ हैं वहीं गणिकाएँ भी, जिससे तुलना द्वारा मनुष्य सचेत हो जाए। ये ग्रन्थ बडी सरसता से मार्ग बतलाते हैं। मैं जब कला की कसौटी पर नायिकाभेद की कविता को कसता हूँ तो उसको बावन तोले पाव रत्ती ठीक पाता हूँ। भावुकता कविता की रीढ़ है नायिकाभेद की कविताओं मे वह कूट-कूट कर भरी है।[1] इस प्रकार नायिकाभेद से सम्बन्धित इन रचनाओं में नारी मन की विविध अन्तर्दशाओं का चित्रण कर कवियों ने एक ओर जहाँ अपनी पर्यवेक्षण शक्ति की सूक्ष्मता का परिचय दिया है वही पर दूसरी ओर उन्होंने गृहस्थ-जीवन की अनेकानेक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न भी किया है। इन कवियों द्वारा नारी प्रकृति का अभिज्ञान प्राप्त कर दाम्पत्य जीवन की कटुता को सहज ही धोया जा सकता है। अतः स्पष्ट ही है कि साहित्यिक दृष्टिकोण से उच्चकोटि की कला, विदग्धता तथा संवेदन शक्ति लिए हुए ये रचनाएँ जहाँ श्लाघ्य कही जायँगी वहीं सामाजिक दृष्टि से भी उनकी उपादेयता स्वीकार की जायगी।

नायिका भेद का उद्गम और उसकी परम्परा—भरतमुनि के नाट्यशास्त्र मे नायिकाभेद का प्राचीनतम विवरण मिलता है इसलिए नायिकाभेद की परंपरा का समारंभ काव्य-शास्त्र की परंपरा के साथ-ही-साथ स्वीकार किया जाना चाहिए। अभिनय कला से सम्बन्धित होने के कारण

---

[1] रसकलस।

नायिकाओं का वर्णन नाट्यशास्त्र में मिलता है किन्तु एक स्वतंत्र विषय के रूप में नहीं। भरतमुनि कृत नायिकाभेदो के ही अन्तर्गत किसी-न-किसी रूप मे वर्तमान आचार्यों द्वारा वर्गीकृत प्रायः समस्त नायिकाएँ आ जाती हैं; ऐसी स्थिति में भरत मुनि ही इस विषय के प्रवर्तक आचार्य हैं तथा उनका नाट्यशास्त्र ही इस विषय का उद्‌गम स्रोत है। तदनन्तर महर्षि व्यास ने अपने प्रसिद्ध 'अग्निपुराण' में रस की महत्ता प्रतिपादित करते हुए प्रासंगिक रूप मे नायिकाभेद का थोड़ा-सा विवेचन प्रस्तुत किया है।

अलङ्कारों की ओर संस्कृत के आचार्यों का ध्यान विशेष था। नायिकाभेद-प्रकरण की ओर उनका ध्यान अपेक्षित रूप से कम गया। इसी कारण रुद्रट, धनञ्जय, भोज, मम्मट, रुय्यक, भानुदत्त, विश्वनाथ, केशवमिश्र आदि ने नायिका-भेद विषय पर अत्यल्प विचार किया है फिर भी इस सम्बन्ध में संस्कृत-साहित्य के तीन ग्रंथ महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं, एक तो धनञ्जय कृत 'दशरूपक', दूसरा विश्व-नाथ कृत 'साहित्यदर्पण', तीसरा भानुदत्तकृत 'रसमंजरी'। नायिकाभेद विषय की विशेष सामग्री 'साहित्यदर्पण और 'रसमंजरी' में उपलब्ध है। नायिकाओं के भेदोपभेदों का जो विस्तार 'साहित्यदर्पण, और 'रसमजरी' मे देखने मे आता है वह 'दशरूपक' में नहीं, फिर भी 'दशरूपक' का अपना महत्त्व है और वह इस कारण कि भरतमुनि के शताब्दियों पश्चात् 'नायिकाभेद' पर इसी ग्रंथ में थोड़ा बहुत विचार किया गया है। दशरूपककार ने भी भरतमुनि की तरह अभिनय से सम्बन्धित रूप में नायिकाओं का विवेचन किया है। धनञ्जय ने जो भेदप्रभेद किये वे वर्तमान नायिकाभेद से मेल नहीं खाते फिर भी 'नायिकाभेद' की परपरा का 'दशरूपक' एक उल्लेख योग्य ग्रंथ है।

विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण मे काव्य के अन्यान्य अंगो के ही समान नायिका-भेद पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। व्रजभाषा नायिकाभेद के जिन कवियो तथा आचार्यों ने 'रस' के प्रतिपादन के लिए विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' का सहारा लिया उन्होंने नायिकाभेद के लिए भी उसी का आधार ग्रहण किया; परन्तु व्रजभाषा में नायिकाभेद की जो परिपाटी चली उसका प्रधान आधार भानुदत्त

कृत 'रसमंजरी' रही जो निश्चय ही नायिकाभेद का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। 'रसमंजरी' के नायिकाभेद का क्रम तथा रसकथन प्रणाली दोनों का ही अनुसरण व्रजभाषा के आचार्यों ने किया। 'साहित्यदर्पण' और 'रसमंजरी' के नायिकाभेद के क्रम भिन्न हैं, व्रजभाषा नायिकाभेद में 'रसमंजरी' का क्रम ही विशेष रूप से गृहीत हुआ है।

व्रजभाषा में नायिकाभेद—व्रजभाषा साहित्य में नायिकाभेद का प्राचीनतम प्राप्य ग्रंथ कृपाराम को हिततरंगिनि है। इसका रचनाकाल सं० १५६८ है। दोहा छन्द में यह ग्रंथ लिखा गया है—

रचौं ग्रंथ कविमत धरे, धरे कृष्ण कौ ध्यान।
राखे सरस उदाहरन, लक्षनजुत सज्ञान॥
वरनत कवि सिंगार रस, छन्द बड़े विस्तारि।
मैं वर्न्यौं दोहान विच यातें सुघर विचारि॥

उपर्युक्त अवतरणों से इस ग्रंथ के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह तो कहा ही जा सकता है कि हिततरंगिणी कृपाराम की रीति-रचना है जिसे कवि ने अपने आचार्यत्व का परिचय देने के उद्देश्य से लिखा था। अन्य कवियों ने भी इस विषय पर विस्तारपूर्वक ग्रन्थ लिख रक्खे थे पर ऐसे ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हो सके हैं। नायिकाभेद पर पहली रचना होने पर भी 'हिततरंगिणी' एक सर्वांगपूर्ण प्रणति है जिसमें तद्विषयक संस्कृत साहित्य का अच्छा उपयोग किया गया है तथा भानुदत्त की रचना का आश्रय विशेष रूप से लिया गया है। इस ग्रंथ को लिखकर कृपाराम व्रजभाषा नायिकाभेद के प्रथम आचार्य कहलाने के अधिकारी हुए। उनका नायिकाभेद कथन पूर्ण विकसित रूप में हमारे समक्ष आता है।

इसके अनंतर इस विषय का दूसरा ग्रन्थ 'साहित्यलहरी' मिलता है। इसके रचयिता महात्मा सूरदास जी कहे जाते हैं। इसमें दृष्टिकूट पदों का संग्रह हुआ है। प्रत्येक पद गेय है जिसमें रसभेद, भावभेद, अलंकार, नायिकाभेद आदि विषयों का समावेश मिलता है। इन विषयों के लक्षण नहीं दिए गए हैं, केवल उदाहरण ही रक्खे गए हैं। ऐसी स्थिति में इसे रीतिशास्त्र की रचना न मानकर रीति पर

आश्रित होकर चलने वाली रचना ही कहा जायगा। इसका प्रणयन सं० १६१७ मे हुआ। ग्रंथ में रचना का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया है—

'नंदनंदनदास हित साहित्य लहरी कीन'

सूरदास जी की कविता में प्रायः सभी प्रकार की नायिकाएँ देखने में आती हैं तथा उनके समकालीन अष्टछाप के अन्य कवियों के पदों में भी अनेकानेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन मिलता है।

इसी समय के आस-पास नन्ददास कृत 'रसमंजरी' भी लिखी गई। इसका रचनाकाल सं० १६२५ के लगभग है। रचयिता ने स्वयं इस बात का संकेत किया है कि उसकी रचना में भानुदत्त के ग्रंथ का सहारा लिया गया है—

'रसमंजरी' अनुसारि कै नंदसुमति अनुसार।
बरनत बनिताभेद जहँ प्रेमसार बिस्तार॥

यह रचना भी पर्याप्त सुन्दर बन पडी है। अपनी स्फुट रचनाओं में भी नन्ददास जी ने नायिकाभेद सम्बन्धी कथन किये हैं।

इस क्षेत्र में नन्ददास जी के बाद रहीम आते हैं जिन्होंने अवधी भाषा में बरवै नायिकाभेद नामक एक अत्यत महत्वपूर्ण रचना प्रस्तुत की। इसकी सरल एवं सरस लेखन शैली अपनी हृदयग्राहिता के कारण प्रसिद्ध है। रहीम विभिन्न भाषाओं के विद्वान थे, साथ ही अच्छे कवि भी थे। उनके नीति विषयक दोहे हिन्दी भाषा भाषियों में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उनकी रचना अनुमानतः केशव के पूर्व ही ठहरती है। 'बरवै नायिकाभेद' में दोहे से भी छोटा छन्द बरवै प्रयुक्त हुआ है। यह रचना ११५ छन्दों मे समाप्त हुई है जिसके अंतिम बीस छन्दों में नायक भेद, सखी वर्णन आदि हुआ है, शेष छन्द नायिकाभेद से संबद्ध हैं। बरवै रचना में रहीम अन्यतम कवि ठहरते हैं। उनका सरस कवित्व काव्य रसिकों को आज तक मुग्ध करता आया है। नंददास ने तो नायिकाओं के लक्षण मात्र अपने ग्रंथ में दिये हैं किन्तु इसके विपरीत रहीम ने केवल उदाहरण ही रखे हैं। उनके बाद इस क्षेत्र मे केशवदास जी आते हैं।

रसिकप्रिया और रस-निर्णय

केशव की प्रारंभिक कृतियों में रसिकप्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना सं० १६४८ में हुई थी।* उनका यह ग्रंथ निस्संदेह उनके सरस हृदय का ही परिचायक है और उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि केशव एक हृदय-हीन कवि हैं। हृदयहीनता के आक्षेप का सबल निराकरण करने के लिये अकेली 'रामचन्द्रिका' ही पर्याप्त है किन्तु 'रसिकप्रिया' तो उनकी रस से सनी हुई रचना है।

'रसिकप्रिया' में नायिकाभेद पर ही विस्तार के साथ विचार हुआ है। नायिका-भेद के ग्रन्थों की जो परंपरा एक क्षीण अस्तित्व लिये हुए संस्कृत साहित्य में भानुदत्त तक आई उसका सूत्रपात्र भाषा-काव्य-क्षेत्र में पहले-पहल आचार्य कृपाराम की 'हिततरंगिणी' द्वारा हुआ। यह कृति स० १५९८ में प्रणीत हुई थी। कृपाराम के अनंतर सूर, नन्ददास, रहीम आदि के होते हुए भी विषय का सम्यक् प्रतिपादन आचार्य केशवदास की लेखनी द्वारा ही संभव हो सका। 'रसिक-प्रिया' की रचना करके इस सिद्धान्त के निरूपण का जैसा प्रयास केशव ने किया परवर्ती आचार्य वैसा नहीं कर पाए। उदाहरण के लिए मतिरात कृत 'रसराज' को लीजिये; वह रचना अपने-आप में पूर्ण नहीं क्योंकि इसमे रसराज शृंगार की परिभाषा देकर उसके अंगागों की पूर्ण व्याख्या नहीं की गई है। इसी से मिलती-जुलती स्थिति हम अन्य आचार्यों की भी पाते हैं पर केशवदास की रचना मे इस प्रकार की अपूर्णता नहीं मिलती। उन्होने नव-रसों का कथन करके शृंगार को नायकत्व अथवा रसराजत्व प्रदान किया है—

नवहू रस को भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि नाइक है शृंगार॥

---

*संवत सोरह सै बरस, बीते अडतालीस।
कातिक सुदि तिथि सप्तमी, बार बरन रजनीश॥

शृंगार रस की महत्ता दिखलाकर वे ग्रन्थ के अन्त तक शृंगार का ही वर्णन करते चले जाते हैं। शृंगार के संयोग और विप्रलंभ पक्ष, उनके प्रकाश और प्रच्छन्न भेद, आलंबन के अन्तर्गत नायक-नायिका के विस्तृत भेदोपभेद, दर्शन के विविध रूप (स्वप्न, चित्र, प्रत्यक्ष आदि), उद्दीपन, विभाव, दम्पति चेष्टाएँ, अनुभाव (हाव, भाव, हेला आदि), मान और मानमोचन के विस्तृत विवरण नायिका की विभिन्न दशाएँ, उसकी दूतिकाएँ आदि के कथनों एवं रोचक उदाहरणों में ग्रन्थ लगभग समाप्त-सा हो जाता है। अन्त में शेष सभी रसों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। केशव ने वीर, रौद्र, करुण आदि अन्य सभी रसों को शृंगार के ही अन्तर्गत दिखलाया है क्योंकि सिद्धान्त रूप में वे शृंगार को ही सब रसों का मूल मानते हैं। एक बार यह स्वीकार कर लेने पर कि 'नवरसमय ब्रजराज नित' तथा 'सबको केशवदास हरि नाइक हैं शृंगार' उन्हे अन्त तक शृंगार की ही महत्ता का प्रतिपादन करना था इसीलिये उन्होंने अन्य रसों का निर्देश करते हुए उन्हें शृंगार के ही अंतर्गत प्रतिपादित किया है।

कतिपय समीक्षकों ने केशवदास के व्यक्तित्व को इस प्रकार चित्रित किया है कि वे केवल एक विलासी रसिक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनका कहना है कि कृष्ण-चरित्र के जैसे अश्लील चित्र उन्होंने अंकित किये हैं वैसे किसी कवि ने नहीं और यह कवि की व्यक्तिगत रुचि एवं प्रकृति की परिचायिका है। यह बात सर्वांश में सत्य नहीं कही जा सकती। इस सम्बन्ध में हमें केशवदास की परिस्थिति पर ध्यान देना पड़ेगा। रसिकप्रिया का प्रणयन महाराज इन्द्रजीतसिंह की इच्छा के अनुसार हुआ था—

तिन कवि केशवदास सों कीन्हों धर्म सनेहु।
सब सुख दै करि यौं कह्यौ रसिकप्रिया करि देहु॥

इन्द्रजीतसिंह के दरबार में अनेक वेश्याएँ रहा करती थी और वे ऐश्वर्य संपन्न विलासप्रिय व्यक्ति थे। ऐसी दशा में यदि शृंगार में कुछ अश्लीलता की पुट न होती तो रसिकप्रिया का उनके लिये मूल्य भी विशेष न होता अतः राज-रुचि का ध्यान रखते हुए केशव को कुछ अति शृंगारिक चित्र सचमुच रखने पड़े।

यह ठीक है कि केशवदास जी ने आदर्श रूप में श्रीकृष्ण को अंकित नही किया किन्तु इसका कारण समय और परिस्थिति की मॉग थी। सही है कि वे उनसे ऊपर उठने की शक्ति न रखते थे और न ही वे कोई संत, महात्मा या साधक थे जिन्हें सासारिकता से कोई वास्ता नही; वे भक्ति भावना में आठों याम डूबे रहने वाले सूर तुलसी न थे। केशव थे शुद्ध सासारिक प्राणी संसार उनके लिये जीवित सत्य था, व्यावहारिक दृष्टि से वे इसे मिथ्या नही मानते थे, सैद्धान्तिक रूप से भले ही ऐसा स्वीकार करते रहे हों। उन्हे जीवन मे सुख-संपदा मिली थी इसलिए जीवन के प्रति उनका स्वस्थ एवं आशावादी दृष्टिकोण था। राजसिक वातावरण में रहने से उनकी प्रकृति राजसी थी इसी कारण विभव, ऐश्वर्य, राजोचित वातावरण आदि के चित्रण में वे बहुत ऊँचे ठहरते हैं। यह सब होते हुए भी भगवान् के प्रति उनकी प्रबल आस्था थी—

*दुख क्यों टरिहैं। हरिजू हरि हैं।**

एक दिन स्वप्न मे जब केशव की विश्वामित्र जी से भेंट हुई तो इन्होंने पूछा—भगवन्! संसार का दुःख कैसे दूर होगा? मुनि ने उत्तर दिया—वत्स! चिन्ता मत करो, भगवान् सब दूर करेंगे। बस, यही उनकी अनन्य निष्ठा का मूल था। यहॉ यह भी अवगत हो जाता है कि केशव को अपने जीवन में कभी दुःख से भी साक्षात् करना पड़ा होगा तभी तो उन्होंने प्रश्न किया कि 'दुःख कैसे टलेगा' नहीं तो यह पूछने की क्या आवश्यकता थी? हॉ, तो यह कह रहा था कि केशव की ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था थी पर वे चौबीस घडी हरि जाप करने वाले जीव न थे। संसार को मिथ्या और असार उन्होंने तभी कहा है जब वे अपने जीवन के अंतिम चरण में प्रविष्ट हुए हैं अथवा विज्ञान गीता में अपना दार्शनिक दृष्टिकोण देने लगे हैं किन्तु वे अपने जीवन में संसार को संसार ही मानकर चले हैं जिसमे विराग भी है, राग भी है, भोग भी है, त्याग भी है। समय के अनुसार उन्होंने सब कुछ स्वीकार किया है। जो नरेश उन्हे इन्द्र के समान संपत्तिशाली† बना

*रामचन्द्रिका : प्रथम प्रकाश।

†भूतल कौ इंद्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग।
जाके राज केशोदास राज सो करत है॥ (कविप्रिया)

देता है उसकी इच्छापूर्ति के लिये कुछ अति शृंगारिक छन्दों की रचना कर देने में वे हर्ज या अपराध न मानते थे। इतने मात्र से ही भाट या वाणी को धन के लिये बेच देने वाला यदि हम समझ लेते हैं तो भूल के साथ-साथ अन्याय भी करते हैं। कविता को केशव अपनी अनुचरी मानते थे तथा कभी किसी इच्छा की पूर्ति के लिये कुछ रचनाएँ तैयार कर देने में वे काव्य की हीनता न समझते थे और अपने ढग से वे गलती पर नहीं थे। दूसरी बात यह है कि केशवदास एक कला-वादी कवि थे। कला, कला के लिये है—ऐसा मान कर चलने वाले के लिये शुद्ध काव्य के अंतर्गत श्लील और अश्लील का विचार नहीं रह जाता; उनकी दृष्टि निबद्ध रहती है—काव्यजनित आनन्द पर। इसलिए केवल कतिपय उत्तान शृंगार के उदाहरण प्रस्तुत कर देने से ही किसी के चरित्र को दूषित नहीं करार दिया जा सकता। रीति काल के प्रायः सभी उच्चकोटि के कवियों ने अपने हृदय की सचाई और शुद्धता का पूरा प्रमाण दिया है। देव कहते हैं—

राधा मोहन लाल कौ जिन्हैं न भावत नेह।
परियो मुठी हजार दस तिनकी आँखिन खेह॥

(भाव-विलास)

उधर मतिराम भी पुकार कर कहते हैं—

बरनि नायका नायकनि रच्यो ग्रंथ मतिराम।
लीला राधारमन की सुदर जस अभिराम॥

तथा

होत रहै मन यों मतिराम कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै बन माल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा रस लीजै॥

इनके हृदय का एक स्वरूप यह भी है। इसे दृष्टि से हटा कर इन कवियों पर विचार नहीं किया जा सकता। ये रीति कवि कुछ तो रीति से बँधे रहने के कारण भी अति शृंगारिक उदाहरण देने को बाध्य थे। उदाहरण के लिये शठ नायक और प्रौढ़ा गणिका नायिका के चित्रण में चारित्रिक दोष की व्यंजना करनी ही पड़ेगी। फलतः कविता का अश्लील हो जाना या शृंगार का उत्तम हो जाना

सहज ही है और यदि इसी आधार पर इन रीति-कवियों को चरित्रहीन घोषित किया जाता है तो अन्याय से कम कुछ नही होता। भिखारीदास जी की यह पंक्ति जो उन्होने अपने काव्य के सम्बन्ध मे कही है बडी प्रसिद्ध है—

आगे के सुकवि जो पै रीझिहै तो कविताई।
न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥

इसी प्रकार केशवदास ने भी 'रसिकप्रिया' के प्रारंभ में काव्य रचना का मंतव्य प्रकट किया है—

ताते रुचि शुचि शोचि पचि कीजै सरस कवित्त।
केशव श्याम सुजान को सुनत होई बश चित्त॥

तथा

राधा राधारमण के कहे यथाविधि हाव।
ढिठई केशवदास की क्षमियो कवि कविराव॥

केशव जिस रास्ते पर चले वह खतरे से खाली न था। वे जानते थे कि उँगलियाँ उठ सकती हैं और किसी की ज़ुबान नही पकडी जा सकती जैसा कि गोसाईं जी के भरत ने कहा है—

गहि न जाय रसना काहू की, कहै जाहि जोई सूझै।
दीनबंधु कारुण्यसिंधु बिन कौन हिये की बूझै॥
क्यों हौ आजु होत सुचि सपथनि कौन मानिहै साँची।
महिमा मृगी कवन सुकृती की खल बच बिसिषनि बाँची॥

(गीतावली)

इसलिए पहले से ही क्षमायाचना करते हुए वे इस कार्य में प्रविष्ट हुए हैं। रसिकप्रिया का प्रारंभ गणेश वंदना से होता है—

एकरदन गजबदन सदन बुधि मदन फदन सुत।
गौरिनन्द आनन्दकन्द जगबन्द चन्द युत॥

मंगलाचरण के तीन प्रकारों को तीन दोहों मे बतलाते हुए वे अपना भाषा संबन्धी दृष्टिकोण बतलाते हैं—

भाषा ब्रज भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय ।
मिलै संस्कृत फारसी जो अति प्रगटी होय ॥

इसके बाद वे रस-निरूपण करते हुए बतलाते हैं कि शृंगार के नायक हरि हैं उनका चरित्र नवरस मय है । शृंगार सर्वव्यापक रस है, उसके अंतर्गत अन्य सभी रसो का अन्तर्भाव हो जाता है । रस की परिभाषा वे इस प्रकार देते हैं—

मिल विभाव अनुभाव पुनि संचारी सु अनूप ।
व्यंग करै थिर भाव जो, सोई रस सुख रूप ॥

रस को केशवदास भावानुभाव व्यभिचारि के सयोग से उत्पन्न न कह उनसे व्यंजित होने वाला बतलाते हैं । फिर परिपाटी के अनुसार वे अपने राज्याश्रय और प्रेरणा आदि से संबधित कतिपय बातों का उल्लेख करते हुए ग्रंथ रचना तिथि का निर्देश करते हैं । इसके अनतर नव रस कथन करते हुए तथा उनमे शृंगार को नायक बतलाते हुए उसका लक्षण देते हैं—

रतिमति की अति चातुरी, रतिपति मंत्र विचार ।
ताही सों सब कहत हैं कवि कोविद श्रंगार ।
शुभ सयोग वियोग पुनि, दो श्रंगार की जाति ।
पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि दोऊ द्वै द्वै भाँति ॥

प्रकाश उसे कहते हैं जिसे 'अपने-अपने चित्त में जानै सिगरे लोग' तथा प्रच्छन्न वह कहलाता है जिसे 'जानै पीउ प्रिया कि सखि होहि जु तिनहि समान ।'

केशव ने नायकभेद पहले बतलाया है । नायक का लक्षण इस प्रकार है—

अभिमानी त्यागी तरुण कोक कलान प्रवीन ।
भव्य क्षमी सुंदर धनी शुचि रुचि सदा कुलीन ॥

मतिराम का दिया हुआ लक्षण इससे बहुत कुछ मिलता है—

तरुन सुघर सुंदर सकल काम कलान प्रवीन ।
नायक सो मतिराम कहि कवित गीत रस लीन ॥

अनुकूल नायक का लक्षण केशवदास जी ने इस प्रकार दिया है—

प्रीति करै निज नारि सों परनारी प्रतिकूल ।

ऐसे नायक का सुन्दर और सच्चा चित्रण उनके उदाहरण में मिलता है—

और कै हास विलास न भावत साधुन को यह सिद्ध सुभावै।
बात वहै जु सदा निबहै हरि कोऊ कहूँ कछु शोधु न पावै।
आसन वास सुवासन भूषण केशव क्यों हूँ यहौ बनि आवै॥
मो विन पान न खात जु कान्ह सुबैर किधौं यह प्रीति कहावै॥

इसी प्रकार अन्य नायकों (दक्षिण, शठ, धृष्ठ) के लक्षण उदाहरण प्रस्तुत कर वे नायिका-भेद विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। पद्मिनी का सर्वांग पूर्ण लक्षण देखिये—

सहज सुगंध स्वरूप शुभ, पुण्य प्रेम सुखदान।
तनु तनु भोजन रोस रति, निद्रा मान बखान॥
सजल सुबुद्धि उदार मृदु, हास बास शुचि अंग।
अनल अमोल अनंग सुव, पद्मिनि हाटक रंग॥

उदाहरण इसका इस प्रकार है—

हँसत कहत बात फूल से झरत जात,
गूढ़ भूर हाव भाव कोक कैसी काटिका।
पन्नगी नगीकुमारि आसुरी सुरी निहारि,
डारौं वारि किन्नरी नरी गमारि नारिका॥
तापै हौं कहा ह्वै जाउँ बलि जाउँ केशवराइ,
रचि विधि एक ब्रज लोचन की तारिका।
भौंर से भ्रमत अभिलाष लाख भाँति दिव्य,
चंपे कैसी कली वृषभानु की कुमारिका॥

जाति के आधार पर नायिकाभेद न तो साहित्यिक परंपरा में पहले हुआ था और न केशव के बाद ही हुआ। आधुनिक युग मे आकर 'हरिऔध' जी ने अवश्य इसे अपने 'रस-कलस' मे स्वीकार किया है। केशव ने ये भेद 'कामसूत्र' से ग्रहण कर साहित्यिक क्षेत्र में सन्निविष्ट किये।

कुछ स्थलों को छोड़ कर केशव ने शृंगार चित्रण में यथेष्ट संयम से काम लिया है तथा कितने ही उदाहरणों में रतिकेलि के नग्न-चित्र न देकर उनके रोचक एवं कलात्मक संकेत भर दिये हैं। उदाहरण के लिए एक 'नवल अनंगा मुग्धा' की कामातुरता का कितना स्पष्ट सजीव और संयत चित्र है—

चंचल न हूजे नाथ अंचल न खैंचो हाथ
सोवै नेक सारिकाऊ शुक तौ सुवायो जू।
मन्द करो दीपद्युति चन्दमुख देखियत,
दौर के दुराइ आऊँ द्वार तौ दिखायो जू॥
मृगज मराल बाल बाहिरै बिड़ार देउँ,
भायौ तुम्हैं केशव सु मोहू मन भायो जू।
छल के निवास ऐसे वचन विलास सुन
सौगुनो सुरत हू तैं श्यामसुख पायो जू॥

इसी प्रकार सुरति-विचित्रा मध्या के कामकेलि की व्यंजना इन शब्दों द्वारा हुई है—

छूटि जात लाज तहाँ भूषण सुदेश केश
टूट जात हार सब मिटत शृंगार है।

सुरति क्रीडा में जो नायिका विचित्रा है उसका उदाहरण केशवदास ने जिस रूप में दिया है वह उनके संयम का ही निदर्शक है। ऐसा कह कर केशव में आए हुए उत्तान शृंगार को अस्वीकार नहीं किया जा रहा है वरन् यहाँ यह बतलाना अभीष्ट है कि घोर शृंगारिक प्रकरणों में भी केशव ने संयम से काम लेने का यथासंभव प्रयत्न किया है। अधिकतर तो वे केलिकलापों की समाप्ति के अनंतर के चित्र उपस्थित कर रतिक्रीड़ा का आभास दे देते हैं।

केशव ने १४ प्रकार की रति (७ बहिर, ७ अंतर) तथा सोलह शृंगारों का नामोल्लेख भी किया है जो परवर्ती आचार्यों में नहीं मिलता। ग्रंथ को पूर्णता प्रदान करने की दृष्टि से ये संकेत महत्त्वपूर्ण हैं।

इसके बाद नायिकाओं का कर्मानुसार विभाजन किया गया है। प्रेमोदय के लिए दर्शन के अनेक प्रकार बतलाए हैं—प्रत्यक्ष-दर्शन, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, श्रवण-दर्शन। हर एक के प्रकाश और प्रच्छन्न भेद किये हैं। प्रच्छन्न श्रवण-दर्शन का उदाहरण देखिये—

सौहैं दिवाय दिवाय सखी इक वारक कानन आनि वसाये।
जानै को केशव कानन तें कित ह्वै हरि नैनन माँझ सिधाये॥
लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मन ही सों मिलाये।
कैसी करौं अब क्यों निकसैं री हरेई हरे हिय में हरि आये॥

ऐसे रमणीय छन्दों से रसिकप्रिया भरी हुई है। तत्पश्चात् दंपति की चेष्टाओं, मिलन, क्रीड़ा कलाप की विविध रीतियों तथा हाव-भावों के निदर्शन हुए हैं। 'मद' हाव कैसा होता है देखिये—

छवि सों छबीली वृषभानु की कुँवरि आजु
रही हुती रूप मद मान मद छकि कै॥
मार हू तें सुकुमार नंद कुमार ताहि
आये री मनावन सयान सब नकि कै॥
हँसि हँसि सौहैं करि करि पायँ परि परि
केशोराय को सौं जब रहे जिय जकि कै।
ताहि समय उठे घनघोर दामिनी सी धाइ
उर लागी घनश्याम तन सों लपकि कै॥

इसके बाद केशव ने भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में स्वीकृत अष्टनायिकाओं का वर्णन किया है। ये विभाजन अवस्था के आधार पर हैं। खंडिता* नायिका का चित्र देखिये—

आज कछू अँखियाँ हरि और सी मानो महावर माँह रँगी हैं।
मेरी सौं मोसहुँ मानहु वेगि हिये रसरोष की रीति जगी है॥

---

* आवन कहि आवै नहीं, आवै प्रीतम प्रात।
ताके घर सों खंडिता, कहै सु बहु विधि बात॥

मोहन मोही सी लागत मोहि इते पर मोहन मोहि लगी हैं।
मेरे वियोग के तेजतची किधौं केशव काहू के प्रेम पगी हैं॥

इन अष्टनायिकाओं में हर एक के तीन-तीन भेद (स्वकीया, परकीया, सामान्या) संस्कृत साहित्य में ही माने जा चुके थे। भानुदत्त की 'रसमंजरी' में ये भेद मिलते हैं। हिन्दी में कृपाराम ने भी इन्हे अपनी 'हिततरंगिनी' में स्वीकार किया था किन्तु केशवदास जी ने अपनी अष्टनायिकाओं में से हर एक के ये तीन भेद न कर केवल अभिसारिका के ही ये तीन भेद माने। शेष सात नायिकाओं के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक दो ही भेद किये। केशव ने अभिसारिका के तीन भेद और किये—प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका, कामाभिसारिका। उनके पूर्व अभिसारिका के केवल ये ही तीन भेद प्रचलित थे—ज्योत्स्नाभिसारिका, दिवाभिसारिका, तमाभिसारिका—जो भानुदत्त द्वारा प्रवर्तित हुए थे। केशव ने जो तीन भेद और किये वे मौलिक थे। उनकी प्रेमाभिसारिका का उदाहरण बड़ा सुन्दर है, इसमें अंकित प्रेमभावना बड़ी परिपुष्ट है—

लीने हमैं मोल अनबोलै आई जान्यो मोह
मोहि घनश्याम घनमाला बोलि ल्याई है।
देखो ह्वै है दुःख जहाँ देहऊ न देखी परै
देखो कैसे बाट केशो दामिनी दिखाई है॥
ऊँचे नीचे बीच कीच कंटकन पीडे पग
साहस गयंद गति अति सुखदाई है।
भारी भयकारी निशि निपट अकेली तुम,
नाहीं प्राणनाथ साथ प्रेम जो सहाई है॥

आगे परिपाटी के अनुसार नायिका के उत्तमा, मध्यमा, अधमा नामक तीन भेदों की व्याख्या कर वे नायिकाभेद का प्रकरण समाप्त करते हैं।

विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत पूर्वानुराग तथा नायिका की दस विरह दशाओं का विवेचन किया गया है तथा नायिकाओं के अतिरिक्त नायिकाओं की भी दस विरह अवस्थाएँ प्रच्छन्न और प्रकाश उपभेदों सहित निरूपित हुई हैं। मतिराम

ने तो विरह-दशाएं ही निर्दिष्ट की हैं, मरण को नहीं स्वीकार किया है तथा ये दशाएं नायिकाओं के लिये ही हैं, नायकों के लिये नहीं। अन्य परवर्ती आचार्यों ने भी इसी प्रकार नायक की ओर ध्यान नहीं दिया है। केशवदास जी ने सबसे पहले रीति ग्रंथ को सब प्रकार से परिपूर्ण रूप देने की चेष्टा की इसी कारण उस काल के आचार्य कवियों में उनको विशेष मान प्राप्त हुआ।

चौदहवें प्रकाश में अन्यरसों का विवेचन हुआ है। हास्य के चार भेद किये गए हैं—मदहास, कलहास, अतिहास, परिहास। करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शम (शांत) रसों का विवेचन संक्षेप में है तथा सभी को शृंगार में समाहित कर दिया गया है। पन्द्रहवें प्रकाश में 'वृत्ति-विवेचन' तथा सोलहवें में 'अनरस-वर्णन' कर के कवि 'रसिकप्रिया' समाप्त करता है। केशव ने ग्रंथ को सब प्रकार से पूर्ण बनाने का उद्योग किया है साथ ही इसमें उनकी मौलिकता भी यथास्थान देखने को मिलती है। इन्हीं गुणों से केशव अन्य रीति ग्रंथकारों से श्रेष्ठ ठहरते हैं तथा ग्रंथ में जो सरसता और हृदयहारिता है वह अनेक कवि हृदय की पूर्ण परिचायिका है।

केशव का नायिका-भेद

हिन्दी में नायिकाभेद के प्रथम आचार्य कृपाराम माने गए जिनकी 'हिततरंगिणी' इस विषय की पहली रचना है जिसमे रस-प्रकरण के अंतर्गत नायिकाभेद के प्रसंग को इतना पूर्ण विस्तार दिया गया परन्तु उनके अनन्तर नायिकाभेद के अन्य कवियों के होते हुए भी केशवदास ही इस विषय के आचार्य रूप में हमारे सामने आते हैं। साहित्यलहरी, रसमंजरी और बरवै नायिकाभेद के रचयिता इस विषय के कवि थे, आचार्य नहीं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाली 'रसिकप्रिया' केशव की प्रसिद्ध कृति है जिसके अन्तर्गत नायिकाभेद का विस्तृत विवेचन संस्कृत के विविध ग्रंथों के आधार पर मिलता है पर उसमें केशव का अपना भी बहुत कुछ है।

कृपाराम के पचास वर्ष बाद केशव की रचना साहित्य क्षेत्र में अवतरित होती है तथा इसके अनन्तर भी लगभग पचास वर्षों तक इस विषय की कोई भी कृति प्रणीत न हो सकी। रसिकप्रिया की रचना के सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिये कि इसका प्रणयन राजा इन्द्रजीत के अनुरोध के फलस्वरूप हुआ फिर भी जहाँ सम्भव हुआ आचार्य केशव ने अपनी मौलिक प्रतिभा का उपयोग किया है।

नायिका-भेद के क्षेत्र में पहला भेद जो उन्होंने नायिकाओं का प्रस्तुत किया वह था जाति के आधार पर। जाति के आधार पर नायिकाओं का विभाजन तद्विषयक सस्कृत तथा हिन्दी के ग्रथों के लिए सर्वथा नूतन था। इसमें संदेह नहीं कि केशव के नायिकाओं की चार जातियाँ—१. पद्मिनी २. चित्रिणी ३. शंखिनि ४. हस्तिनी—वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से ली गई हैं परन्तु उनका नायिका-भेद के क्षेत्र में समावेश केशव ने ही किया। जहाँ नायिकाओं के संख्यातीत भेद-विभेद हुए वहाँ जाति के आधार पर उनका वर्गीकरण न होना एक कमी थी जिसका निराकरण केशव ने किया। यह भूल संस्कृत काल में हो चुकी थी (भरतमुनि से लेकर भानुदत्त की 'रसमंजरी' के रचनाकाल तक) तथा हिन्दी में भी। केशव के

बाद भी नायिका विभाजन के इस सुदृढ़ आधार की उपेक्षा कर हिन्दी के कवियों ने उस भूल को दुहराया परन्तु केशव द्वारा प्रवर्तित इस परम्परा का अनुसरण आधुनिक युग में 'हरिऔध जी' ने अपने 'रसकलस' में लगभग ३४० वर्षों के बाद किया है। उन्होंने भी पहले जाति के ही आधार पर इन्हीं चार भेदों का उल्लेख किया है।

केशव के नायिका-भेद की दूसरी विशेषता है—उसकी सरलता और स्पष्टता। प्रत्येक नायिका के लक्षण और उदाहरण बड़े ही स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनका दिया हुआ पद्मिनी का लक्षण देखिये—

सहज सुगंध स्वरूप शुभ, पुण्य प्रेम सुखदान।
तनु-तनु भोजन रोस रति, निद्रा मान बखान॥
सरल सुबुद्धि उदार मृदु, हास-बास शुचिअंग।
अमल अलोम अनंग भुव, पद्मिनि हाटक रंग॥

इन लक्षणों से पद्मिनी की पहचान हो सकती है। पद्मिनी नायिका की शारीरिक विशेषताओं के साथ-साथ उसकी मानसिक दशा का भी निर्देश हुआ है तथा उसका हाटक रंग (सुवर्ण वर्ण) भी बतलाया गया है। ये सब वस्तुतः विषय से केशव की सूक्ष्म-अभिज्ञता का परिचय देते हैं। इस प्रकार के भेद केशव ने शारीरिक और मानसिक उभय विशेषताओं के आधार पर किये हैं। इसी प्रकार अन्य नायिकाओं के लक्षण भी वे स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं। केशव के लक्षण उदाहरणों की अपेक्षा अधिक सुन्दर बन पड़े हैं। वास्तव में लक्षणगत इतनी विशेषताओं को एक ही छन्द में सफाई के साथ व्यक्त कर देना कोई सरल काम नहीं फिर भी अन्य ग्रंथों की अपेक्षा रसिकप्रिया के औदाहरणिक भाग में विशेष प्रवाह, प्रसाद गुण एवं सरसता है।

इसके अनन्तर केशव ने कर्मानुसार नायिकाओं के दो स्थूल भेद किये—१. स्वकीया २. परकीया। गणिका को उन्होंने स्थान न दिया और न हीं परकीया के विशेष भेदोपभेद किये। परवर्ती आचार्यों—देव, मतिराम, पद्माकर आदि ने कर्मानुसार नायिका के ३ भेद किये—स्वकीया, परकीया और गणिका। साथ ही

उन्होंने परकीया के विशेष भेदोपभेदों में अपनी शक्ति का व्यय किया। इसमें संदेह नहीं कि केशव प्रधानतया भक्त-कवि न होकर रीतिवादी थे किन्तु परकीया और सामान्या (गणिका) के कथन में उन्होंने रीतिवादी कवियों के समान आचरण नहीं किया। इसका कारण उनके समकालीन भक्त कवियों का प्रभाव ही हो सकता है। यद्यपि केशव ने लौकिक शृंगार का वर्णन किया है तथापि उनके समय में कृष्ण और राधिका बिल्कुल लौकिक नायक और नायिका नहीं बन पाये थे। केशव दास ने कृष्ण को 'परमपुरुष' और राधा को 'मायादेवी' कहा है। उनके काव्य में राधाकृष्ण की भक्ति की अपेक्षा उनकी स्तुति की भावना अधिक है। यदि केशव की तरह परवर्तीकाल के अन्य कवि भी परकीया और सामान्या नायिकाओं के भेदोपभेदों पर जोर नहीं देते, तो आचार और उपयोगिता की दृष्टि से उन कवियों की रचना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती और समाज पर भी इसका हितकारी प्रभाव पड़ता।

केशव ने स्वकीया के तीन भेद—१. मुग्धा २. मध्या ३. प्रौढ़ा तो परंपरा के आधार पर किये। स्वकीया को इन तीन स्थूल भेदों में बाँटने की परिपाटी तो विक्रम की १० वीं शताब्दी ('दशरूपक' की रचना काल) से ही चली आ रही थी। विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' तथा भानुदत्त की 'रसमंजरी' में भी ये भेद स्वीकृत हुए हैं। कृपाराम ने भी उसे उठाया तथा केशव के बाद आज तक वह क्रम चला आ रहा है पर केशव ने स्वकीया के इन तीन भेदों में से प्रत्येक के चार-चार उपभेद अपने ढंग पर किये जो परवर्ती आचार्यों द्वारा नहीं माने गए। धीरादि भेद पृथक् न लिख कर मध्या और प्रौढ़ा के साथ-ही-साथ लिखे गए हैं। स्वकीया के दो भेद—ज्येष्ठा और कनिष्ठा को केशव ने छोड़ दिया तथा परकीया के केवल दो भेद 'ऊढ़ा' और 'अनूढ़ा' नामक किये जिन्हें केशव के पूर्ववर्ती कृपाराम तथा परवर्तियों ने ग्रहण किया। परकीया के विशेष विस्तार में न जाकर उन्होंने अपने को यहीं सीमित रखा। इसके कारण पहले ही कहे जा चुके हैं। भावी समाज को परकीया के आकर्षण से बचाने के लिए उन्होंने परकीया के विभेदों पर बल न देकर स्वकीया को ही विशेष महत्व दिया। सामान्या अथवा गणिका को तो उन्होंने बिल्कुल ही छोड़ दिया। ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेदों का

छोड़ना भी सहेतु ही है। इस ओर विशेष रुचि हो जाने के ही कारण परवर्ती काव्य में अविचारशील कवियों द्वारा आमुष्मिकता का विशेष प्रचार हुआ। फलतः आज रीति साहित्य गर्हित माना जाने लगा है।

इन भेद-विभेदों के बाद केशव ने नाट्यशास्त्र की प्रणाली पर नायिकाओं के केवल आठ ही भेद दिये हैं। ब्रजभाषा नायिका-भेद के अन्य आचार्यों (कृपाराम, मतिराम, पद्माकर, हरिऔध) की तरह उन्होंने 'प्रवच्छ्तपतिका' और 'आगतपलिका' का उल्लेख नहीं किया है। नायिकाओ के इन आठ भेदों के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या भेद न कर 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक प्रत्येक के दो-दो भेद किये। 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' की यह प्रणाली न तो संस्कृत की परंपरा में मिलती है और न ही ब्रजभाषा के आचार्यों द्वारा अनुसरित हुई है। केशव ने इस प्रणाली को भोजराजकृत 'शृंगार प्रकाश' के आधार पर चलाना चाहा था। 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' स्थूल और सूक्ष्म, लौकिक और अलौकिक का वाचक है।

अष्ट नायिकाओं में से अभिसारिका के छः भेद जो केशव ने किये वे उनके अपने हैं। यह विभाजन परवर्ती कवियों ने नहीं दिया है। अभिसारिका में शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका तो प्रचलित हैं किन्तु केशव द्वारा वर्णित प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका, कामाभिसारिका और अनेक प्रच्छन्न एवं प्रकाश भेद ब्रजभाषा नायिकाभेद में प्रचलित नही हुए। अभिसारिका के वर्णन में ही उन्होंने स्वकीया आदि तीन भेद किये हैं जब कि अन्य सात नायिकाओं के वर्णन में ये भेद नहीं दिये गए हैं। अभिसारिका के जो तीन मौलिक भेद केशव ने दिये हैं (प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका, कामाभिसारिका) उन सबके उदाहरण बड़े रोचक बन पड़े हैं। यहाँ पर प्रेमाभिसारिका का ही एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

लीनैं हमैं मोल अनबोलै आई जान्यो मोह,
मोहि घनश्याम घनमाला बोलि ल्याई है।
देखो ह्वैहै दुख जहाँ देह ऊ न देखी परै,
देखो कैसे बाट केशो दामिनि दिखाई है॥

ऊँचे नीचे बीच कीच कंटकन पीडे पग,
साहस गयंद गति अति सुखदाई है।
भारी भयकारी निशि निपट अकेली तुम,
नाहीं प्राणनाथ! साथ प्रेम जो सहाई है॥

इस पद मे केशव का लक्षण बड़ी सुन्दरता मे घटित हुआ है। यहाँ नायक नायिका के प्रश्नोत्तरों से नाटकीय तत्व का भी समावेश किया गया है। निशा की दामिनी संयुक्त घनमाला एवं मार्ग के व्यवधानों से उद्दीप्त होकर तथा सहास उद्वेग आदि सचारियों के संयोग से शृ गार रसोत्पत्ति हुई है। भयानक रात्रि एवं ऊबड खाबड़ मार्ग की कटोरता अत्यल्प हो जाती है जब नायक का प्रेम नायिका के हृदय में सहचर बना हुआ है तथा वह अपने अकेलेपन में भी अकेली नहीं है। प्रेमपात्र के साहचर्य का यह स्निग्ध भाव भय के भाव का तिरोभाव कर देता है। इस प्रकार के उदाहरणों की कमी रसिकप्रिया में नहीं। केशव ने इस प्रकार के नवीन नायिका-भेदों से तत्संबंधी साहित्य की वृद्धि ही की है। प्रायः प्रत्येक क्षेत्र मे मौलिकता के इस योगदान के ही कारण केशव अपने जीवन-काल में ख्याति-लब्ध हो आचार्य कहलाने लगे थे।

यद्यपि केशवदास के ये भेद आगे ग्रहीत न हुए किन्तु इससे उनकी रचना का महत्त्व कम नहीं होता। केशव की 'रसिकप्रिया' ने अनेक दशाब्दियों तक काव्याभ्यासियों को काव्य-रचना का मार्ग दिखाया है।

केशव ने सामान्या नायिका पृथक् रूप से न लिखकर भी अभिसारिका के अंतर्गत लिखा है। इन आठ प्रकार की नायिकाओं के अतिरिक्त नायिका के ३ प्रचलित भेदों—अन्यसंभोगदुःखिता, गर्विता, मानवती—का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

जाति, कर्म संबंधी भेदोपभेदों और अष्ट नायिकाओ के अनतर केशव ने गुणों के आधार पर, प्रचलित और ग्रहीत परिपाटी के आधार पर नायिकाओं के ये तीन भेद—१. उत्तमा २. मध्यमा ३. अधमा उपस्थित कर नायिकाभेद विषय का एक सुन्दर, सुबोध और स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया और इसमें सन्देह नहीं कि रसिकप्रिया आज भी इस विषय की एक सुन्दर रचना है।

संक्षेप में निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि केशव ने अपनी रुचि और इच्छा के प्रकाश मे प्रचलित परिपाटी को स्वीकार किया पर उसे ज्यों का त्यों नहीं। उसमे उन्होंने कॉट-छॉट, सशोधन एवं परिष्करण के साथ अपने मौलिक विचारों का योग भी दिया। जाति के आधार पर नायिका-भेद आज भी इस विषय से केशव की विशेष रुचि और अभिज्ञता का परिचायक है। व्यर्थ तथा समाज के लिए अहितकर भेदो को छोडकर तथा कतिपय नये भेदों को जोड कर केशव ने अपनी रचना को यथाशक्ति परिपूर्ण बनाने की चेष्टा की है।

काव्यदोष और वृत्ति-निरूपण

काव्यदोप—काव्य-रीति के ज्ञाता होने के कारण केशवदास जी ने जहाँ काव्य के अनेकानेक उपकरणों, अलंकार, रसभाव आदि पर विचार किया है वहीं काव्यानन्द के बाधक काव्य दोषों पर भी अपना मत प्रकट किया है। 'कवि-प्रिया' के तीसरे प्रभाव में इनकी विवेचना मिलती है। सच्चा कवि तो केशव के मतानुसार बहुत बड़ा शब्द-विन्यास-कर्ता होता है वह तो सुवर्णों को खोजता फिरता है फिर ऐसे कवि की रचना मे, जहाँ एक वर्ण भी निर्विचार विन्यस्त नहीं होता, दोप के लिए कोई स्थान नही होता। जिस प्रकार से मूर्ख से मित्रता करना अथवा कृतघ्नी का पोषण करना असाधारण बुद्धिहीनता का प्रमाण है उसी प्रकार सदोश काव्य का सृजन और अध्ययन भी। लेश मात्र भी दोष रखने वाला काव्य उसी प्रकार से अशोभन और अग्राह्य हो जाता है जिस प्रकार से मदिरा की एक बूँद गंगाजल से परिपूर्ण घट को अपवित्र बना देती है—

राजत रंच न दोषयुत कविता बनिता मित्र।
बुंदक हाला परत ज्यों गंगाघट अपवित्र ॥

केशव ने १८ काव्यदोषों का विवेचन 'कविप्रिया' में किया है—

१. अंध	२. बधिर	३. पंगु
४. नग्न	५. मृतक	६. अगन
७. हीनरस	८. यतिभंग	९. व्यर्थ
१०. अपार्थ	११. हीनक्रम	१२. कर्णकटु
१३. पुनरुक्ति	१४. देशविरोध	१५. काल विरोध
१६. लोक विरोध	१७. न्याय विरोध	१८. आगम विरोध

जहाँ तक इस बात का प्रश्न है कि इन काव्य दोषों के मानने का आधार क्या है डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' की सम्मति अवतरणीय है—"केशव का

'अंध' दोष विश्वनाथ के 'प्रसिद्धि विरुद्धता' दोष से मिलता है। 'बधिर' दोष केशव मिश्र के 'व्याहत' दोष से साम्य रखता है। केशव का 'पंगु' दोष और केशव मिश्र का 'भग्न छंद' दोष एक ही है। कविप्रिया का 'मृतक' दोष 'अलंकार शेखर' के 'अवाचक' दोष से मिलता है। 'नग्न' दोष में केशव की मौलिकता दीख पड़ती है; शेष १३ दोषों में से व्यर्थ, अपार्थ, कालविरोध और आगम-विरोध दोष तो काव्यादर्श के अनुरूप हैं तथा हीनरस, यतिभंग, हीनक्रम और कर्णकटु दोष अलंकार शेखर के क्रमशः विरस, भग्नयति, भग्नक्रम और कष्ट से मिलते हैं। केशव का 'नीति विरोध' दोष अलंकार शेखर के 'देशादिविरोध' दोष के अन्तर्गत तथा 'अगण' दोष 'भग्नछंद' दोष के अन्तर्गत आ सकता है।"* इस प्रकार केशव को उक्त काव्यदोषों के निरूपण में केशव मिश्र और आचार्य दण्डी से विशेष सहायता मिली।

केशव द्वारा निरूपित काव्य दोषों का स्वरूप इस प्रकार है—काव्यपंथ से विरुद्ध बातें जहाँ कही जायँ वहाँ 'अंध दोष' होता है, जहाँ कोई बात शब्द विरुद्ध कही जाय वहाँ 'बधिर दोष' होता है (इस शब्द विरुद्ध से केशव का आशय क्या है, नहीं कहा जा सकता)। छन्द भंग में 'पंगु' और अलंकार हीन काव्य रचना में केशव 'नग्न' दोष मानते हैं। अन्य आचार्य अलंकारों को काव्य के लिए अनिवार्य नहीं मानते किन्तु केशव अलंकारों के बिना काव्य सृजन व्यर्थ समझते हैं। अर्थ हीन रचना में 'मृतक' दोष होता है। जहाँ अशुभ गणों का प्रयोग हो वहाँ 'अगण' दोष तथा काव्य में जहाँ किसी रस की तो व्यंजना की गई हो किन्तु उसे पढ़ने से विरसता पैदा हो वहाँ 'हीनरस' दोष होता है। 'यति भंग'† दोष केशव ने अकारण लिख दिया है, उसे 'पंगु' के अन्तर्गत ले लेना चाहिए। किसी काव्य प्रबन्ध के अन्तर्गत कही गई बातों में जहाँ असंगति हो पूर्वा पर का मेल न हो (पूर्व पर अनमिल सदा) वहाँ 'व्यर्थ' नामक दोष होता है। 'अपार्थ' दोष वहाँ होता है जहाँ भावार्थ ही स्पष्ट न हो इसे 'क्लिष्टता' नामक दोष समझना

---

* हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव—डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'

† और बरण के चरण जहँ और चरण सों लीन। (कविप्रिया)

चाहिए। शेष क्रमहीन, कर्णकटु, पुनरुक्ति, देश विरोध, काल विरोध, लोकविरोध, नीति विरोध और आगम विरोध दोषों के लक्षण उनके नाम से ही जाने जा सकते हैं। काव्य दोषों का वह निरूपण यथेष्ट सुन्दर और युक्ति संगत हिन्दी है। हिन्दी काव्यशास्त्र के अध्ययन का जिस काल में सूत्रपात हुआ उस काल में ही ऐसी अन्तर्दृष्टि और मौलिक विवेचन क्षमता केशवदास जी को निःसंदेह श्रेष्ठ आचार्य कोटि में ला खड़ा करती है।

'रसिकप्रिया' मे कतिपय रस दोषों का भी विवेचन किया गया है। रस से सम्बन्ध रखने वाले काव्य दोषों को केशव ने 'अनरस' नाम दिया है। 'अनरस' अथवा काव्यान्तर्गत रसदोष केशव के अनुसार ५ प्रकार के होते हैं—१. प्रत्यनीक २. नीरस ३. विरस ४. दुःसंधान ५. पात्रादुष्ट। जहाँ विरोधी रसों (जैसे शृंगार-वीभत्स, रौद्र-करुणा) का एक साथ विवरण हो वहाँ 'प्रत्यनीक' नामक रस दोष आता है; जहाँ मन मे कपट हो और मुँह से प्रेम का प्रकाशन किया जाय वहाँ 'नीरस' तथा जब शोक के वातावरण मे आनंद अथवा भोग का प्रसंग रक्खा जाय तब कविता में 'विरस' दोष होता है। 'नीरस' और 'विरस' दोषों का निरूपण ठोस आधार की अपेक्षा रखता है जिसके अभाव में ये दोनों रसदोष की श्रेणी मे नहीं रक्खे जा सकते। 'दुःसंधान' का लक्षण स्पष्ट नहीं है—

एक होइ अनुकूल जहँ दूजो है प्रतिकूल।

प्रश्न उठता है क्या वस्तु अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो? इस प्रश्न का उत्तर केशव के लक्षण से प्राप्त नहीं होता, यदि अनुमान से उत्तर दिया जाय, 'रस' तो 'प्रत्यनीक' और 'दुःसंधान' मे कोई अन्तर नहीं रह जाता। 'पात्रादुष्ट' का निरूपण इस प्रकार है—

जैसो जहाँ न बूझिये तैसो करिये पुष्ट।
बिनु बिचार जो बरनिये सो रस पातरदुष्ट॥

अर्थात् 'जहाँ पर जैसा समझे वैसा न वर्णन करके अनसमझे कुछ का कुछ वर्णन करे'* वहाँ 'पात्रादुष्ट' नामक रसदोष होता है।

---

*हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास (पृ. ६१)—डा० भगीरथ मिश्र

वास्तव में रसदोषों का यह विवेचन अत्यन्त साधारण स्तर का है जिसमें न कोई गंभीरता है न कोई ठोस आधार है और न ही कोई वैज्ञानिक दृष्टि है। हम डा० भगीरथ मिश्र के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि—'उपर्युक्त वर्गों पर विचार करने से जान पड़ता है कि यह रसदोष के प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से समीचीन नहीं हैं। ध्यान से देखें तो प्रत्यनीक, विरस, दुःसंधान आदि विरोधी भावों के आधार पर ही हैं।'* प्रत्यनीक, विरस और पात्रादुष्ट 'अलंकार शेखर' के 'प्रकान्तरसवैरित्व' अनौचिती और व्यक्ति विपर्यय से साम्य रखता है तथा दुःसंधान 'व्यक्तिविपर्यय' में ही समा सकता है। 'नीरस' केशव की निजी उपज है।

वृत्ति-निरूपण—रसिकप्रिया के पन्द्रहवें प्रकाश में केशवदास ने वृत्तियों पर भी अत्यन्त संक्षेप में विचार किया है। उनके मतानुसार वृत्तियाँ ४ प्रकार की होती हैं—(१) कौशिकी (२) भारती (३) आरभटी (४) सात्त्विकी। जहाँ करुण, हास्य और शृंगार रसों का वर्णन हो, सरल शब्दावली हो और शुभ भाव हों वहाँ कौशिकी; जहाँ वीर अद्भुत और हास्य रसों का वर्णन हो तथा शुभ अर्थों का प्रकाश हो वहाँ भारती; जहाँ रौद्र, भयानक एवं वीभत्स रसों का वर्णन हो और पद-पद पर यमक अलंकार का प्रयोग हो वहाँ आरभटी तथा जहाँ अद्भुत, वीर शृंगार और शान्त रस का वर्णन हो और कविता के सुनते ही भाव बुद्धिगत हो जाय (अर्थात् प्रसाद गुण हो) वहाँ कविता में सात्त्विकी वृत्ति हुआ करती है।

---

*हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास (पृ० ६१)

(१) कहिये केशवदास जहँ करुणा हास शृंगार।
सरल वर्ण शुभ भाव जहँ, सो कौशिकी विचार॥

(२) वरणे जामें वीररस, अरु अद्भुत रस हास।
कहि केशव शुभ अर्थ जहँ, सो भारती प्रकाश॥

(३) केशव जामें रुद्र रस, भय बीभत्सक जान।
आरभटी आरंभ यह, पद-पद जमक बखान॥

(४) अद्भुत वीर शृंगार रस, समरस वरणि समान।
सुनतहि समुझत भाव जिहिं, सो सात्विकी सुजान॥

यह तो वृत्तियों का वर्गीकरण हुआ, वृत्ति क्या है यह बात रसिकप्रिया में स्पष्ट नहीं की गई है परिणामतः उक्त विवरण द्वारा पाठक वृत्ति का आशय नही समझ सकता। "केशव ने संस्कृत के आचार्यों के 'कैशिकी' के स्थान पर 'कौशिकी' तथा 'सात्त्वती' के आधार पर 'सात्विकी' शब्दों का प्रयोग किया है। केशव की वृत्तियो के वर्णन का आधार भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ही प्रतीत होता है। केशव ने कैशिकी वृत्ति में करुण, सात्वती मे शृंगार, आरभटी में सम अथवा शान्तरस तथा भारती मे हास्य रस का वर्णन करना भरतमुनि से अधिक लिखा है, अन्यथा दोनों का वर्णन समान है।"* वृत्ति निरूपण के आधार वृत्तिका है तथा केशव उसे क्या समझते हैं?—के सम्बन्ध मे डा० हीरालाल दीक्षित के उक्त मत से भिन्न मत डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' ने व्यक्त किया है, वे कहते हैं—"केशव ने वृत्तियों के भेदों का निरूपण साहित्य दर्पण के आधार पर किया है, किन्तु अनेक रसों में उनकी स्थिति का वर्णन उन्होंने अपने ढग से किया है। साहित्य दर्पण † के अनुसार कैशिकी शृंगार रस मे, भारती सब रसो मे, आरभटी, रौद्र और वीभत्स रस में तथा सात्वती वीर रस मे रहती है।"‡ केशव ने वृत्तियो का जो वर्गीकरण किया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनके मतानुसार वृत्ति रसव्यंजना की एक शैली है किन्तु वृत्ति की परिभाषा देकर उसे समझाने की चेष्टा आचार्य ने नहीं की है। वृत्ति का जो कुछ प्रतिपादन उन्होंने किया है उससे यह अवश्य निष्कर्ष निकलता है कि वृत्ति के आशय के सम्बन्ध में केशव की दृष्टि निर्भ्रान्त थी। वृत्ति सचमुच रसव्यजना की शैली है भी। पहले तो 'वृत्ति' का सम्बन्ध नाटकों से था, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रस का किन्तु बाद मे जब रस काव्य की आत्मा के रूप में ग्रहीत हुआ तब वृत्ति भी काव्य का अंग बनी। प्रारंभ में उसका सम्बन्ध अभिनय की प्रणाली से था, नायक और नायिका

---

*डा० हीरालाल दीक्षित—आचार्य केशवदास पृ० ३००

†शृंगारे कैशिकी, वीरे सात्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च वीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती॥ (साहित्य दर्पण)

‡ हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव।

की व्यवहार-विधि से था। 'साहित्य-दर्पण' की व्याख्या करते हुए तर्कवागीश ने 'वृत्ति' का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ इस प्रकार दिया है—

वर्त्तते रसोऽनयेतिवृत्तिः।

अर्थात् जो रस की उत्पत्ति का कारण हो अथवा जिसके कारण रस का आस्वादन हो सके, वह वृत्ति है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में वृत्ति का निरूपण इस प्रकार किया है—

विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः।

'विलास' कहते हैं नाटक के नायक के कतिपय गुणों को जैसे उसका गंभीरता पूर्वक देखना, अनूठी चाल से चलना तथा सस्मित वार्तालाप करना।* इसी प्रकार 'विलास' नायिका का एक स्वभावज अलंकार भी है, प्रिय के दर्शन हो जाने पर उसके चलने के रंग ढंग मे, बात करने के हास संयुक्त तौर-तरीके मे उठने-बैठने में जो एक प्रकार का बाँकापन आ जाता है वही 'विलास' कहलाता है।† वास्तव में नायक-नायिका के ये ही गुण उनके अभिनय में प्राण प्रतिष्ठा करने में सहायक होते हैं जिससे प्रेक्षकवर्ग के हृदय मे रसस्वरूप आनंद की लहर लहराने लगती है। ठीक इसी प्रकार काव्यान्तर्गत वर्णित समस्त भाव-भंगिमाएँ एवं वे समस्त साधन जो इस रस की व्यंजना मे सहायक होते हैं, वृत्ति कहलाते हैं। वृत्तियाँ रसानुभूति की मुख्य सहायिकाएँ हैं।

---

*धीरा दृष्टिर्गतिश्चित्रा विलासे सस्मितं वचः।—साहित्य दर्पण।

†यानस्थानासनादीना मुखनेत्रादिकर्मणाम्।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्ट संदर्शनादिना॥

रतन-बावनी

प्रायः यह बात भुला दी जाती है कि केशवदास जी ने वीरकाव्य भी लिखा है। 'रतन-बावनी' उनकी सर्वप्रथम रचना है जिसमे षोडश वर्षीय कुमार रत्नसिंह का मुग़ल वाहिनी से युद्ध का वर्णन है। केशव की चलाई हुई इसी बावनी-पद्धति पर ही संभवतः भूषण ने अपनी 'शिवा-बावनी' की रचना की।

रत्नसिंह मधुकरशाह के सुपुत्र थे। उन्होने अपने पिता का आदेश पाकर सम्राट् अकबर की रणकुशल वाहिनी से संग्राम किया तथा वीरतापूर्वक शत्रु-सैन्य का संहार करते हुए वीरगति प्राप्त की। १६ वर्ष के कुमार रत्नसिंह में वीरता, सत्य-निष्ठा, आत्मोत्सर्ग, कर्तव्यज्ञान, दृढ़ता, युद्ध-कौशल आदि गुणों की प्रतिष्ठा इस काव्य में सफलतापूर्वक की गई है। वीर दर्प से पूर्ण कुमार की उत्साहवर्धनी वाणी सुनिये—

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय।
करहु पैज पनधारि मारि सामंतन लिज्जिय।
बरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब।
जुरि करि संगर आज स रमंडल भेदहु सब।
मधुसाह नंद इमि उच्चरइ खंड-खंडपिंडहि करहुँ।
कट्टहुँ सुदंत हथियान के मर्दहुँ दल यह प्रन धरहुँ॥

इस ऐतिहासिक घटना को कविवर केशवदास जी ने कल्पना के आवरण से सज्जित कर एक रमणीय काव्य का रूप दे दिया है।

जिस समय रतनसिंह रणचंडिका को बलि चढाने के लिये प्रस्थान करता है, भगवान द्विज रूप मे अवतरित होकर आते हैं—

जहँ रतनसेन रण कहँ चलिव हल्लिव महि कंप्यो गयन।
तहँ है दयाल गोपाल तब विप्र भेष बुल्लिय बयन॥

वे रतनसेन को प्राणों का मूल्य करना सिखाने हुए कहते हैं कि प्राण रहने पर मर्यादा अथवा प्रतिष्ठा फिर प्राप्त हो सकती है। इसलिए दुर्लभ मानव जीवन सभी प्रकार रक्षणीय है, तुच्छ मर्यादा के लिये उसे गँवा देना उचित नहीं—

प्राण जु तौ पति बहु रहै, पति लगि प्रान न छंडिये।

वे नीति की शिक्षा देते हुए फिर समझाते हैं कि हर हालत में पंचों का साथ देना ही हितकर है इसलिए यदि युद्ध के समय पंच भागें तो आपके लिये भी रण से विमुख होना ही श्रेयस्कर है। पंचों का साथ देने से मनुष्य को लज्जित नहीं होना पड़ता। भगवान यहाँ तक कहते हैं—

सुनि महाराज मधुशाह सुव को न जुद्ध जुरि भज्जियहु?

कर्म-निष्ठ रतनसेन भगवान् के तर्कों का खंडन करता है और कहता है कि मर्यादा की रक्षा के लिये यदि प्राण भी देने पड़े तो हमें हँस कर अर्पित करना चाहिये क्योंकि—

प्राण गये फिर-फिर मिलहि, पति न गए पति पाइये।

विप्र रूप भगवान् तब उस किशोर को दूसरी तरह से समझाते हैं कि तुम्हें मन, कर्म और वचन से विप्र का वचन शिरोधार्य होना चाहिये किन्तु इस पर भी कुमार टस से मस नहीं होते। कुमार कहने लगते हैं—

पतिहि गएँ मति जाय, गएँ मति मान गरै जिय।
मान गरे गुन गरै, गरे गुन लाज जरै जिय।
लाज जरे जस भजै, भजे जस धरम जाइ सब।
धरम गए सब करम, करम गए पाप बसै तब॥
पाप बसे नरकन परै, नरकन केशव को सहै।
यह जानि देहुँ सरवसु तुम्हैं, सुपीठ दएँ पति ना रहै॥

भगवान् रतनसेन की 'पति' संबंधिनी मति को पूर्णरूप से दृढ़ जानकर मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं तथा श्रीराम का रूप धारण कर रतनसिंह को अपना शुभ दर्शन देते हैं। यह देख रतनसिंह कि 'पति' संबंधिनी मति और भी दृढ़ हो जाती

है। वह कहता है—भगवन् ! यदि आपके वचनों का मै अनुसरण करूँगा तो संसार मुझे कायर कहेगा इसलिए मै युद्ध ही करूँगा, योद्धाओ को युद्ध ही अंगीकार कराऊँगा ! पृथ्वी को भुजाओं का एव मुण्डमाली को मुण्डमालाओं के हार का उपहार दूँगा और इस मिट्टी के शरीर का रणभूमि की ही मिट्टी में मिलाकर आपके साथ चलूँगा। भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे यशस्वी होने का वरदान देते हैं और अन्तर्ध्यान हो जाते हैं।

कल्पना के इस कलित कलेवर से केशवदास जी ने काव्य को रमणीय बनाने की यथाशक्ति चेष्टा की है। इस ग्रथ की रचना द्वारा, सच तो यह है कि, केशव दास जी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश कर रहे थे; उनके मस्तिष्क में समस्त महाभारत की पुराणों की कथाएँ जमी हुई थी जिनमे भगवान का अवतार लेना एक सरल सी बात हुआ करती थी। उसी की प्रतिच्छाया इस कृति में ईश्वर-अवतरण प्रसंग पर पड गई है। कथा मे इस उद्‌भावना से जहाँ एक ओर रतनसेन के चरित्र को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है वहीं पर दूसरी ओर काव्य में सरसता भी आ गई है। इतना अवश्य है कि अलौकिक तत्व का सयोग घटित करने से कुछ अस्वाभाविकता भी मिलती है।

इस काव्य में दो बातें ऐसी हैं जो हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करती हैं—एक है कवि की अलंकार-योजना और दूसरा उसका सवाद-कौशल। कुमार रतनसिंह और विप्ररूप भगवान् की सारी बातचीत बड़े ही प्रभावपूर्ण ढँग से दिखाई गई है तथा उसमे कही-कही एकावली आदि अलंकारों के प्रयोग से तर्कों एव कथनों मे विशेष सजीवता आ गई है। तर्कों में न तो अस्पष्टता है और न बल का अभाव। फलतः भगवान् की वाक्पटुता और नीतिज्ञता तथा कुमार की चारित्रिक दृढ़ता ही बड़ी ही सुन्दरता से अंकित हुई है। इस प्रकार एक कुशल संवादकार का पूर्व रूप हमें केशव की रतनबावनी में ही देखने को मिल जाता है।

अब रण-चित्रण संबंधी एक छप्पय देखिये—

दीठि पीठि तन फेर पीठ तन इक्क न दिक्खिय।
फिरहु फिरहु फिर फिरहु कहत दल सकल उमग्गिय॥

ठान ठान निज शान मुरकि पाठान जु धाए।
काढ़ काढ़ तरवार तरल ता छिन तठ आए॥
इक इक्क घाव घल्लिव सबन रतनसेन रनधीर कहँ।
जनु ग्वाल बाल होरी हरषि खंडल छोर अहीर कहँ॥

इस षट्पदी में दूसरे, तीसरे और चौथे चरण मे वीप्सा के प्रयोग से तथा अंतिम पद मे उत्प्रेक्षा के कारण विशेष चित्रोपमता आ गई है। युद्ध के उत्साह तथा मोर्चे और एक का एक से भिड़ना तथा कृपाणों का आघात भारतीय त्योहारो में प्रसिद्ध होलिकोत्सव से उपमित हुए हैं। रतन सिंह युद्ध करता हुआ वीर गति प्राप्त करता है। उसके उत्साही एवं वीर सैनिक अपने प्रिय नायक के द्वारा स्थापित आदर्श का अनुकरण करने को कटिबद्ध हो जाते हैं। इसी समय आकाश-वाणी होती है जो उन्हे शत्रु का संहार करने का निर्देश करती है जिसे सुन कर सभी सैनिक और भी आवेश मे आ जाते हैं और प्राण-पण से समर में जूझ पड़ते हैं। इसका परिणाम देखिये—

जहँ सहस चार सैना प्रबल तिन महँ कोउ न घर गयव।
सोई रतनसेन महाराज कौ केशव यश छन्दन कहिव॥

'रतन-बावनी' का महत्व दो दृष्टियो से है, एक तो कवि की काव्य-प्रतिभा के क्रमिक विकास की दृष्टि से और दूसरे रीति काल का प्रथम वीर काव्य होने की दृष्टि से। केशव की प्रथम कृति होने पर भी यह रचना अत्यंत सफल बन पड़ी है। रतन सिंह उतने बड़े जननायक न थे जितने बड़े शिवा जी थे इसी कारण इस रचना को भूषण की रचनाओं के समान लोकप्रियता न प्राप्त हो सकी किन्तु इतने से ही रचना का महत्त्व कम नहीं हो सकता। एक किशोर की सच्ची वीरता का प्रभाव प्रत्येक पाठक के हृदय को प्रभावित किये बिना न रहेगा।

केशव की इस ओजपूर्ण काव्य रचना में राजस्थानी भाषा के चारण काव्य का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। रसोत्कर्ष के लिए अनेक स्थलों पर डिंगल के अनुकरण मे टवर्ग का विशेष प्रयोग तथा द्वित वर्णों की योजना हुई है यथा—

जहँ अमान पट्ठान ठान हिय बान कुठट्टिव ।
तहँ केशव काशी नरेश दल रोस धरिट्टिव ।।
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुं दुंदुभि बज्जिय ।
तहाँ विकट भट सुभट घुटक घोटक तन लज्जिय ।।

'भाषा मे ओज लाने के लिये समयानुसार क्रियाओं का प्राकृत रूपो का प्रयोग चंद के मार्ग का अनुसरण ही प्रकट कर रहा है।'* शैली की दृष्टि से इस ग्रंथ में अपने साहित्य की प्राचीन परम्परा का पालन मिलता है। राजस्थान का दूहा एवं छप्पय-साहित्य वीरकाव्य की दृष्टि से विशेप उत्कर्ष लाभ कर चुका था तथा वे ही छन्द वीर-काव्य की परंपरा मे प्रयुक्त होते आ रहे थे। इसी शैली का आश्रय लेकर केशव ने भी अपनी रतनबावनी लिखी, दोहा और छप्पय छन्दो के प्रयोग से उन्हें पूरी सफलता भी मिली।

भूषण की भाँति केशव की दृष्टि प्रशंसात्मक काव्य-रचना की ओर न रह कर वीरोन्मेष की व्यजना की ओर अधिक रही है। बावनी का नायक रतनसेन अन्त में पराजित होकर मारा गया है। वीर रस से उत्तेजित पाठक की भावना अंत मे करुणरस मे निमग्न हो जाती है।'†

---

* लाला भगवानदीन
† लाला भगवानदीन

केशव के काव्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव

आचार्य केशवदास संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत साहित्य, साहित्य शास्त्र, दर्शन आदि विषयों का उन्होंने परिशीलन किया था इसलिए संस्कृत साहित्य का प्रभाव उन पर पड़ा, यह स्वाभाविक ही है। चरित्र काव्यों (वीरसिंह देव चरित, रतन बावनी और जहाँगीरजसचन्द्रिका) को छोड़कर शेष कृतियों पर संस्कृत साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

रामचन्द्रिका केशव की सर्वोत्कृष्ट रचना है। उसकी रचना की प्रेरणा उन्हें स्वप्न में आदि रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि से मिली—

वालमीकि मुनि स्वप्न महँ दीन्हों दर्शन चारु।
केशव तिनसों यों कह्यो क्यों पाऊँ सुख सारु॥

तब मुनिवर ने केशव को 'राम नाम' का महत्त्व बतलाया। संक्षेप में उन्होंने भगवान् राम के गुणों का विश्लेषण किया* और अन्त में कहा कि यदि तुम राम गुणगान नहीं करोगे तो वैकुण्ठ की प्राप्ति नहीं हो सकती—

न रामदेव गाइहै। न देव लोक पाइहै॥

इस प्रकार वाल्मीकि के रामायण का प्रभाव कवि की रामचन्द्रिका पर निश्चय ही पड़ा किन्तु वह प्रभाव अधिक नहीं है। रामचन्द्रिका और वाल्मीकीय रामायण के कथानकों में पर्याप्त अन्तर है केवल कतिपय स्थानों पर ही साम्य दृष्टि-

---

*बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहिन दीन्हों।
मारि न मार्यो शत्रु क्रोध मन वृथा न कीन्हों॥
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी।
दान सत्य सन्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी॥
मन लोभ मोह मद कामवश भये न केशवदास भणि।
सोई पर ब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतार मणि॥

गोचर होता है। उदाहरण के लिए अयोध्या नगरी का विशद् वर्णन, विश्वामित्र द्वारा महाराज दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना, ताडका वध * (थोड़े हेर-फेर के साथ), राम की बरात के लौटते समय मार्ग में परशुराम जी का मिलना, श्रीराम द्वारा पुत्र-धर्म और नारी-धर्म का निरूपण सीता की शोध करते हुए हनुमान् जी का रावण के अन्तःपुर में घूमना, शत्रुघ्न का लवणासुर के वध के लिए जाना आदि। १०वें प्रकाश में गंगा जी का भरत को समझाने का प्रसंग हटा दीजिये, ११वें प्रकाश में सीता जी के गान वाद्य का प्रभाव वर्णन निकाल दीजिए तब कथासूत्र वाल्मीकि के आधार पर ही चलता हुआ मिलेगा। १२वें से १५वें तथा १८वे प्रकाश की घटनावली भी वाल्मीकि पर ही आधारित है किन्तु वाल्मीकि रामायण के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण प्रसग ऐसे हैं जिनका समावेश रामचन्द्रिका मे नहीं भी मिलता।

अध्यात्म रामायण का भी प्रभाव रामचन्द्रिका के कथानक में अनेक स्थलो पर स्पष्ट है जैसे शिलारूप मे पड़ी हुई अहल्या का उद्धार, ११वें प्रकाश में राम के पूछने पर निवास के योग्य स्थान का भरद्वाज द्वारा निर्देश, १७वे प्रकाश मे रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार,† चित्रसारी में अंगद द्वारा मदोदरी का घटीसा जाना (इस प्रसग में अध्यात्म रामायण मे तो मदोदरी के नग्न होने की बात आई है किन्तु रामचन्द्रिका में कुछ आगे बढकर कवि ने उसके उरोजो का भी वर्णन किया है) तथा रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध मे की जाने वाली देव-स्तुति और राम राज्य वर्णन।

प्रसन्नराघव नाटक का प्रभाव रामचन्द्रिका पर विशेष है इसके रचयिता सस्कृत के प्रसिद्ध अलकार ग्रथ 'चन्द्रालोक' के कृती जयदेव ही हैं (ये गीत-

---

* केशव ने ताडका का वध विश्वामित्र के आश्रम में पहुँचने के उपरान्त किया है किन्तु वाल्मीकि ने आश्रम पहुँचने के पूर्व ही इस घटना को स्थान दिया है।

† अध्यात्मरामायण में कुंभकर्ण और मेघनाद के वध के पूर्व ही रावण शक्ति द्वारा लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है, यही बात रामचन्द्रिका मे भी है।

गोविन्दकार जयदेव से भिन्न व्यक्ति हैं)। इनका समय १२०० ई० के आस-पास माना गया है। रामचन्द्रिका के संवादों पर प्रसन्नराघव नाटक का प्रभाव विशेष है। सीता स्वयंवर में आए हुए राजाओं का परिचय केशव ने दो बन्दीजनों के सवाद द्वारा कराया है जिनके नाम हैं—सुमति और विमति जो प्रसन्नराघव के मजीरक और नूपुरक के स्थानापन्न कहे जा सकते हैं। इन पात्रो के कथनोपकथनों में यथेष्ट भाव साम्य है। बाण-रावण संवाद जो रामचन्द्रिका के चौथे प्रकाश मे रखा गया है, प्रसन्नराघव के बाण-रावण संवाद से प्रभावित है। बाण का धनुष और सीता के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए सभा से चला जाना तथा किसी का आर्त्त स्वर सुनकर रावण का सभा से चल देना भी प्रसन्नराघव का ही अनुकरण है। इसी प्रकार राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र का सूर्योदय काल में मिथिला प्रवेश और सूर्योदय वर्णन, तदनन्तर जनक और विश्वामित्र का सम्मिलन, रामादि का परिचय, धनुर्भंग, सीता का राम को जयमाल पहनाना, राम का निर्वासन, विरही राम की चकोर के प्रति की गई उक्तियाँ, मुद्रिका-दान आदि छोटे-छोटे अनेकानेक प्रसंगों पर प्रसन्नराघव नाटक का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

हनुमन्नाटक का भी प्रभाव रामचन्द्रिका के विस्तारों पर काफी हद तक देखा जा सकता है (किन्तु ऐसा न समझ लेना चाहिए कि जहाँ-जहाँ केशव संस्कृत काव्य अथवा नाटकीय कृतियों से प्रभावित हुए हैं वहाँ-वहाँ उनका अपना कुछ है ही नहीं)। हनुमन्नाटक के रचयिता दामोदर मिश्र हैं जिनका समय १००० ई० के आस-पास है। इस नाटक में १४ अक हैं। रामचन्द्रिका की कथा का प्रारंभ हनुमन्नाटक के ही समान महाराजा दशरथ के चार पुत्रों के जन्म परिचय से होता है। इसके अतिरिक्त रामचन्द्रिका के १०वे प्रकाश में भरत-कैकेयी सवाद; ११वे प्रकाश में पंचवटी वर्णन; १२वे प्रकाश में मारीच वध, सीता विलाप, राम की विरह वेदना, सीता का उत्तरीय पाकर अनेकानेक कल्पनाओं का उदय, हनुमान् जी द्वारा गिराई गई राम की मुद्रिका पर सीता की उक्तियाँ; १४वे प्रकाश में रावण-हनुमान् संवाद, लकादहन (अंशतः), रावण का विभीषण पर पाद-प्रहार, प्रतिहार द्वारा रावण का ऐश्वर्य वर्णन, युद्ध भूमि में रावण द्वारा विभीषण

पर शक्ति प्रहार, कुम्भकर्ण और मन्दोदरी का रावण को समझाने का प्रयत्न; १६वें प्रकाश में रामचन्द्र को देखकर लौटे हुए रावण के दूत की उक्ति तथा और आगे चलकर लवकुश के साथ राम की सेना का युद्ध आदि प्रसंगों का आधार हनुमन्नाटक ही है।

इनके अतिरिक्त रामचन्द्रिका के अनेक वर्णनात्मक स्थलों पर अन्य संस्कृत ग्रंथों का प्रभाव है। उदाहरण के लिए तीसरे प्रकाश में वन-वर्णन और आश्रम वर्णन कादम्बरी की अलंकृत शैली के नमूने हैं; रामचन्द्रिका के उत्तरार्ध में राम नाम माहात्म्य, रामविरक्ति वर्णन, जीवोद्धारण यत्न, मथुरा-माहात्म्य आदि पर पुराणों की छाया है; राज्यश्री निन्दा, बचपन के व्यवहार जनित दुःख, जवानी के व्यवहार जनित दुःख और वृद्धावस्था जनित दुःखों का वर्णन योगवासिष्ठ के वैराग्य प्रकरण पर आधारित है तथा वसंत, चन्द्र, प्रभात, कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता, जलाशय, जल-क्रीडा आदि के वर्णन का कारण काव्य कल्पलतावृत्ति और अलंकार शेखर ऐसे काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की प्रेरणा है जिसकी ओर केशव का स्वाभाविक अनुराग भी था।

रामचन्द्रिका के प्रारंभ में दिया गया कवि-वंश-परिचय और ग्रंथ-रचना-कारण तथा ग्रंथान्त में रामचन्द्रिका माहात्म्य वर्णन संस्कृत काव्य रचना पद्धति का अनुसरण ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत के ग्रंथों का प्रभाव केशव की रामचन्द्रिका पर काफी है। कथानक, वर्णनशैली, प्रसंग और भावों का आधार अनेक स्थलों पर संस्कृत ग्रंथ ही हैं। भाव साम्य के कतिपय उदाहरण उक्त कथनों की पुष्टि-रूप में यहाँ दिये जा रहे हैं—

प्रसन्नराघव

नटति नरकराग्रन्यग्रसूत्राग्रलग्न-
द्विपदशनशलाकामंचपाचालिकेयम्।

त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कंठिताना-
मतिरभसवतीवद्माभृतां चित्तवृत्तिः ॥*

रामचन्द्रिका

नचति मंच पंचालिका कर संकलित अपार।
नाचति है जनु नृपन की चित्तवृत्ति सुकुमार॥

प्रसन्नराघव (नूपुरक प्रश्न करता है)

कोऽयं हर्षोल्लसत्पुलकविसंष्ठुलकपोलस्थल
चलित कुंडल सदृश निवेशनापदेशेन
प्रकटित हरशरासनकर्णपूरमनोरथो राजते ॥†

रामचन्द्रिका (सुमति का प्रश्न है)

कुण्डल परसन मिस कहत कहौ कौन यह राज।
शंभु सरासनगुण करौं करणालंबित आज॥

प्रसन्नराघव (मंजीरक की घोषणा)

आकर्णान्तं त्रिपुरभवनोद्दंडकोदंडनद्धां।
मौर्वीमुर्वीवलयतिलकः कोऽपि यः कर्षतीह।
तस्यायान्ती परिसरभुवं राजपुत्री भवित्री।
कूजत्काचीमुखरजघना श्रोत्रनेत्रोत्सवाय ॥‡

---

* हाथी दात से निर्मित शलाका मे लगे सूत्र द्वारा सूत्रधार से संचालित पंचालिका (पुत्तलिका) मच पर नाच रही है, मानों शकर का धनुष चढ़ाने के लिये आतुर राजाओं की मनोवृत्ति नाच रही हो।

† यह कौन है, जो हर्षोल्लास से रोमाचित अपने कपोलों पर झूलते हुए कुण्डलों का स्पर्श करने के बहाने शकर के धनुष को कान तक खींचने की इच्छा प्रकट कर रहा है।

‡ जो राजा शकर के प्रचंड धनुष मे लगी हुई प्रत्यञ्चा को कान तक खींचेगा उसके निकट आती हुई किंकिणी से भूषित यह राजपुत्री उसके लिये आनन्द का कारण बनेगी।

रामचन्द्रिका (विमति का कथन)

कोउ आज राजसमाज में बल शम्भु को धनु कर्षिहै।
पुनि श्रौण के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षिहै।
वह राज होइ कि रंक केशवदास सो सुख पाइहै।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै॥

प्रसन्नराघव (जनक का विश्वामित्र जी के सम्बन्ध में कथन)

यः कांचनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये।
वर्णोत्कर्षं गतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥*

रामचन्द्रिका (जनक का कथन)

जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये॥

प्रसन्नराघव (विश्वामित्र का कथन)

अवनिमवनिपालाः संघशः पालयन्ता,
मवनिपतियशस्तु त्वा विना नापरस्य।
जनक कनकगौरी यत्प्रसूता तनूजा,
जगति दुहितृमन्तं भूर्भवन्तं वितेने॥†

रामचन्द्रिका (विश्वामित्र कहते है)

आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुवपालैं सदाई।
केवल नामहिं के भुवपाल कहावत हैं भुव पाल न जाई॥

---

*जिन्होंने तप रूपी अग्नि में अपने शरीर रूपी कचन को डालकर उत्कृष्ट वर्ण (जाति या रंग) प्राप्त किया है, ये वही मुनि विश्वामित्र हैं।

† कितने ही राजा पृथ्वी का पालन करते हैं परन्तु पृथ्वीपति होने का यश आपके समान दूसरे को नहीं मिला। हे जनक! पृथ्वी ने स्वर्णाभ कन्या (सीता) को उत्पन्न कर आपको संसार में उसका पिता होने की ख्याति दी है।

भूपन की तुमही धरि देह विदेहन में कलकीरति गाई।
केशव भूषण की भवि भूषण भू तन से तनया उपजाई ॥

प्रसन्नराघव (परशुराम का कथन)

नृपशतसुकुमारकंठनालौ कदनकलाकुशलः परश्वधो मे।
दशवदनकठोरकंठपीठीकदनविनोदविदग्धतां विदधातु ॥*

रामचन्द्रिका (केशव के परशुराम की उक्ति)

अति कोमल नृपसुतन की ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दशकंठ के काटहुँ कठ कुठार ॥

× × × ×

हनुमन्नाटक (राम की उक्ति)

जातः सोऽहं दिनकरकुले क्षत्रियः श्रोत्रियेभ्यो,
विश्वामित्रादपि भगवतो दृष्टदिव्यास्त्रपारः।
अस्मिन्वंशे कथयतु जनो दुर्यशो वा यशो वा,
विप्रे शस्त्रग्रहणगुरुणः साहसिक्याद्बिभेमि ॥†
हारः कंठे विशतु यदि वा तीक्ष्णधारः कुठारः।
स्त्रीणां नेत्राण्यधिवसतु सुखं कज्जलं वा जलं वा ॥
संपश्यामो ध्रुवमपि सुखं प्रेतभर्तु मुखं वा।
यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः ॥‡

---

* सैकड़ों राजाओं के सुकुमार कंठ काटने वाला मेरा प्रचंड कुठार अब दशमुख रावण के कठोर कंठ काटने में निपुणता प्रदर्शित करे।

† मैं सूर्यवंश में उत्पन्न क्षत्रिय हूँ, शास्त्रज्ञों और भगवान् विश्वामित्र से मुझे दिव्यास्त्र प्राप्त हुए हैं। अब इस वंश का अपयश हो अथवा यश हो, ब्राह्मण के ऊपर शस्त्र उठाने के साहस से मैं डरता हूँ।

‡ मेरे कंठ में हार पड़े या तीक्ष्ण कुठार, स्त्रियों के नेत्रों में काजल का वास हो या जल (आंसू) का, सुख की प्राप्ति हो या मृत्यु की, चाहे जो हो, ब्राह्मणों के प्रति हम वीर नहीं हैं।

रामचन्द्रिका (उपर्युक्त दोनों श्लोकों का भाव केशव के इस एक छन्द में ही देखिए)

कंठ कुठार परै अब हार कि, फूले असोक कि सोक समूरो।
कै चितसार चढ़ै कि चिता, तन चंदन चर्चि कि पावक पूरो।
लोक में लोक बड़ो अपलोक, सु केशवदास जु होउ सो होऊ।
विप्रन के कुल को भृगुनन्दन, सूर न सूरज के कुल कोऊ॥

हनुमन्नाटक

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते।
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात्प्राणोऽपि भारायते।
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते॥*

रामचन्द्रिका

हिमांशु सूर सो लगै सो वात वज्र सी वहै।
दिसा लगैं कृसानु ज्यों विलेप अङ्ग को दहै॥
विसेस कालरात्रि सों कराल राति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये॥

हनुमन्नाटक

एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना।
रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्॥†

---

* चन्द्र सूर्य की तरह (असह्य) प्रतीत होता है, मन्दवायु वज्र की तरह, फूलमाला सुइयों की तरह और चन्दन का लेप चिनगारियों की तरह। रात सौ कल्पों की तरह लम्बी हो गई है, प्राण भारस्वरूप बन गये हैं। आह! पत्नी का वियोगकाल विनाशकाल बन गया है।

† हे सीता! अब इसे (मुद्रिका को) दूसरे नाम से संबोधित करो। राम ने बहुत दिनों से तुम्हारे विरह में इसे कङ्कण का पद दे रखा है।

रामचन्द्रिका

तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होत यहि नाम ।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम ॥

हनुमन्नाटक

कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपति : कः साथिकस्त्वेकदा,
यातः सप्तसमुद्रलंघनविधौकृत्वाऽऽह्निको वेत्सि त ।
अस्ति स्वस्ति समन्वितो रघुवरे रुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमान्,
को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतोचिताम्बुप्रदः ॥*

रामचन्द्रिका

कौन के सुत, बालि के, वह कौन बालि, न जानिये ।
काँख चापि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये ॥
है कहाँ वह, वीर अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गयो, रघुनाथ बान विमान बैठि सिधाइयो ॥

हनुमन्नाटक

अंके कृत्वोत्तमांगं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तु-
र्भूमौ विस्तारितायां त्वचिकनकमृगस्यांगशेष निधाय ।
बाण रक्षः कुलघ्नं प्रगुणितमनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णोः ।
कोणेनोद्वीक्ष्यमाणस्त्वदनुजवचनेदत्तकर्णोऽयमास्ते ॥†

---

* तुम कौन हो ? बालि के पुत्र । कौन बालि ? मैं उसे जानता हूँ, एक बार एक ही दिन में तुमको लेकर जिन्होंने सात सागर पार किया था । वह कुशल से तो हैं ? संसार में राम के रुष्ट होने पर किसकी कुशल रह सकती है ? उसे तिलाञ्जलि कौन दे सकता है ?

† सुग्रीव की गोद पर सिर रखे हुए, हनुमान की गोद पर चरण रखे हुए, शेष अंग स्वर्णमृग की छाल पर फैलाये हुए, लक्ष्मण द्वारा अर्पित किये गये राक्षसों के नाशक तीक्ष्ण बाण पर दृष्टिपात करते हुए ये (श्रीराम) तुम्हारे अनुज (विभीषण) की बातों को ध्यान से सुन रहे हैं ।

रामचन्द्रिका

भूतल के इंद्र भूमि पौढ़े हुते रामचन्द्र,
मारिच कनक मृगछालहिं बिछाये जू।
कुंभहर-कुंभकर्ण-नासाहर-गोद सीस,
चरणअकंप-अक्ष-अरि उर लाये जू॥
देवान्तक-नरान्तक-अन्तक त्यों मुसकात,
विभीषण वैन तन कानन रुंखाये जू।
मेघनाद-मकराक्ष-महोदर प्राणहर,
वाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू॥

इन भाव साम्य निदर्शक अवतरणों से सिद्ध है कि संस्कृत ग्रंथो का प्रभाव केशव की रचना पर पर्याप्त परिमाण मे है—कहीं कही मूल भाव प्रसग सहित ले लिया गया है और कभी-कभी मूल भाव का उपयोग एक भिन्न प्रसंग में कर दिया गया है। इसी प्रकार कभी तो मूल-भाव केशव की भाषा-शैली मे शब्दशः उतर आया है और कभी भाव मात्र ही कवि द्वारा ग्रहीत हुआ है, विशेषता यह है कि भाषान्तरित भाव को कवि ने प्रायः नष्ट नही होने दिया है और सच पूछिए तो इसी में कवि कर्म की सफलता है। संस्कृत साहित्य के अनेकानेक सुन्दर भाव हिन्दी के अच्छे-से-अच्छे कवि ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इन कवियों मे मौलिक भावों की उदभावना करने की शक्ति नहीं।

'रसिकप्रिया' में केशवदास जी ने रस-विवेचन और नायिकाभेद निरूपण ही मुख्य रूप से किया है। रस-विवेचन में भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र', मम्मट के 'काव्यप्रकाश', विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण', धनंजय के 'दशरूपक' का आधार लिया गया है। रस की व्याख्या में वे लिखते हैं—

मिलि विभाव अनुभाव पुनि, सचारी सु अनूप।
व्यग करे थिर भाव जो, सोई रस सुख रूप॥

यह परिभाषा साहित्य जगत मे भरतमुनि ने ही सर्वप्रथम प्रस्तुत की थी—

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः

(नाट्यशास्त्र)

मम्मट और विश्वनाथ ने भी इसी को स्वीकार किया था—

विभावानुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥

(मम्मट कृत काव्यप्रकाश)

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम ।

इसी प्रकार विभाव और उसके भेद (आलंबन,उद्दीपन), अनुभाव, सात्विकभाव, सचारीभाव तथा हावभाव हेलादि का विवेचन 'साहित्यदर्पण' पर आधारित है, अनुभाव और सात्विक भावों की व्याख्या मे धनञ्जयकृत दशरूपक का भी प्रभाव है, स्थायी भावो के निर्देशन मे मम्मट के काव्यप्रकाश का अनुकरण है। शृंगार, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शात आदि रसो की व्याख्या मे भी 'साहित्य दर्पण' का ही आधार मिलता है।

नायिकाभेद के निरूपण में केशव ने भानुदत्तकृत 'रसमंजरी' (प्रायः लक्षणों के लिखने में) और विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' (प्रायः भेदोपभेदों के निर्धारण में) को अपना उपजीव्य बनाया है। नायिकाओं के स्वकीया, परकीया और सामान्या ये तीन भेद 'साहित्यदर्पण' 'रसमंजरी' और 'दशरूपक' में समान रूप से स्वीकृत हुए हैं। हिन्दी के अन्य आचार्यों की भाँति केशव ने भी इन्हे यथावत् स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार स्वकीया के ३ भेदो—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा को भी उन्होंने 'रसमजरी' और 'साहित्यदर्पण' के अनुसार ग्रहण कर लिया है। 'रसमंजरी' के अनुसार केशव ने मुग्धा के चार भेद—ज्ञातयौवना, अज्ञातयौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा—तो किये हैं किन्तु उनके नाम बदल दिए हैं—'नवोढ़ा' को उन्होंने 'नवलवधू' कहा है तथा शेष तीन नाम—'नवयौवना' 'नवल-अनंगा' और 'लज्जाप्राया' क्रमशः 'साहित्यदर्पण' के 'प्रथमावतीर्ण यौवना', 'प्रथमा-

वतीर्ण मदन विकारा' और 'समधिक लज्जावती' के ही दूसरे नाम हैं। 'साहित्य-दर्पण' में मध्या के पाँच भेद किये गए हैं—१. विचित्रसुरता, २. प्ररुढस्मरा, ३.प्ररूढयौवना, ४. ईषत्प्रगल्भ वचना और ५. मध्यमव्रीड़िता जिनमें से अंतिम भेद को केशव ने छोड़ दिया है। प्रथम चार को उन्होंने परिवर्तित नामों से सुरतिविचित्रा, प्रादुर्भूतमनोभवा, आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना क्रमशः स्वीकार कर लिया है। 'साहित्यदर्पण' में प्रौढ़ा के चार भेद इस प्रकार हैं—समस्तरत-कोविदा, आक्रान्तनायका, दूरव्रीडा और भावोन्मत्ता जिन्हें केशव ने क्रमशः समस्त रसकोविदा, आक्रामित नायका, लब्धापति और विचित्र विभ्रमा कर दिया है। 'रसिकप्रिया' में प्रौढ़ा के ३ भेद—धीरा, अधीरा और धीराधीरा भी साहित्य-दर्पण के ही अनुसार हैं। ज्येष्ठा और कनिष्ठा को केशव ने छोड़ दिया है। साहित्यदर्पणकार के ही अनुकरण पर केशव ने परकीया के केवल दो भेद—ऊढा और अनूढा किये हैं और सामान्या का विस्तृत विवेचन नहीं किया है। अवस्था-नुसार नायिका के जो ८ भेद विश्वनाथ ने किये हैं—१. प्रोषितभर्तृका २. खंडिता ३. अभिसारिका ४. कलहान्तरिता ५. विप्रलब्धा ६. उत्कंठिता ७. वासकसज्जा ८. स्वाधीनपतिका—वे ही केशव को मान्य हुए हैं। गुणों के आधार पर साहित्य दर्पण और रसमजरी के अनुसार केशव ने भी उत्तमा, मध्यमा और अधमा नामक तीन भेद किये हैं। नायक, सखी, दूती आदि के विषय में भी केशव का मत विश्वनाथ से मिलता-जुलता ही है।

'कविप्रिया' की रचना में केशव ने काव्यादर्श,* अलंकारशेखर, † काव्यकल्पलतावृत्ति‡ का मुख्य रूप से सहारा लिया है। काव्यदोषों के वर्णन में केशव ने दण्डी का आधार लिया है, अनेक दोषों के लक्षण उन्हीं के अनुसार हैं तथा कई उदाहरण भी दण्डी के काव्यदोषों के उदाहरणों के अनुवाद हैं।

---

* दण्डी

† केशवमिश्र

‡ अमरचन्द

उदाहरणार्थ देखिये —

लक्षण साम्य

व्यर्थ दोष का लक्षण दण्डी इस प्रकार देते हैं—

एकवाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वापर पराहतम् ।
विरुद्धार्थतया व्यर्थमिति दोषेषु पठ्यते ॥

केशव उसे इस प्रकार कहते हैं—

एक कवित्त प्रवन्ध में अर्थ विरोध जु होय ।
पूरब पर अनमिल सदा, व्यर्थ कहैं सब कोय ॥

उदाहरण साम्य

कालविरोध दोष का उदाहरणः

पद्मिनी नक्तमुन्निद्रा स्फुटत्यह्नि कुमुद्वती ।
मधुरुत्फुल्लनिचुलो निदाघो मेघदुर्दिनः ॥—दण्डी
प्रफुलित नवनीरज रजनि, वासर कुमुद बिसाल ।
कोकिल सरद, मयूरमधु, वरषा मुदित मराल ॥—केशव

'कविप्रिया' का चौथा प्रभाव 'अलंकार शेखर' के १५वें अध्याय पर आधारित है जिसमें केशव ने कवि-कोटियों और कवि-रीतियों का उल्लेख किया है। इन बातों का विस्तार 'अलंकार शेखर' में 'कविप्रिया' की अपेक्षा कहीं अधिक है। स्वयं 'अलंकार शेखर' में आया हुआ बहुत सारा विवेचन और निरूपण 'काव्य-कल्पनावृत्ति' पर समाधारित है। 'कविप्रिया' में ५वे प्रभाव से लेकर आठवे प्रभाव तक का सामान्यालंकार विवेचन 'काव्य कल्पलतावृत्ति' और 'अलकार शेखर' के आधार पर किया है तथा इसके आगे के प्रकरणों में दण्डी के 'काव्यादर्श' से सहायता ली है; इस सम्बन्ध में हम विस्तृत विवेचन 'अलंकार निरूपण' प्रकरण में कर आए हैं।

केशव की 'विज्ञानगीता' पर कृष्णमिश्र द्वारा लिखित संस्कृत भाषा के 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नामक नाटक 'श्रीमद्भागवत', 'गीता' और 'योगवाशिष्ठ' का प्रभाव परिलक्षित होता है। कुछ लोगों का कहना है कि 'विज्ञानगीता', 'प्रबोधचन्द्रोदय' का

अनुवाद है किन्तु यह धारणा भ्रमात्मक है; इसमें तो सन्देह नहीं कि दोनों का कथानक एक ही है किन्तु 'विज्ञानगीता' में आए हुए सूक्ष्म विस्तारों में 'प्रबोध चन्द्रोदय' के विस्तारों से बड़ा अन्तर है। विज्ञानगीता में महामोह और विवेक का युद्ध दिखलाया गया है जिसमे विवेक विजयी होता है। इसी रूपक को विज्ञानगीता द्वारा कवि ने प्रस्तुत किया है 'प्रबोध चन्द्रोदय' एक नाटकीय कृति है जिसमें रचयिता को अपनी ओर से कुछ कहने के लिए अवसर नहीं किन्तु केशव ने महामोह का नाना द्वीपों और देशों पर प्रभुत्व, तदनन्तर विवेक से युद्ध आदि का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। कथानक के अन्तर्गत केशव ने अनेकानेक नवीन प्रसंगो, उद्भावनाओ एवं चरित्रो का समावेश कर दिया है। केशव ने प्रबोधचन्द्रोदयकार के अनेक पात्रों को छोड दिया है, कुछ के नाम परिवर्तित कर दिए हैं तथा कतिपय नए पात्रों की भी सृष्टि की है जैसे शिव, पार्वती, पाखण्ड, सन्यासी, सती, भ्रम, वसुकला, वसिष्ठ, शुक्र, केशव और नारीवेश। जिस पात्र को कृष्णमिश्र ने 'पुरुष' कहा है उसे केशव ने 'जीव' नाम दिया है और 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे आए हुए विभ्रमावती, हिंसा, उपनिषद, मैत्री आदि पात्र विज्ञान गीता में नहीं रखे गए हैं। नाटक होने के कारण 'प्रबोधचन्द्रोदय' में गद्य-पद्य मिश्रित शैली का प्रयोग हुआ है किन्तु 'विज्ञानगीता' में केवल पद्य का ही प्रयोग मिलता है। 'विज्ञानगीता' में आए हुए वर्षा वर्णन, शरद् वर्णन, विश्वनाथ पंचक, गंगाष्टक आदि सर्वथा मौलिक प्रसंग हैं। यह सब होते हुए भी 'विज्ञानगीता' का आधारभूत उपजीव्य 'प्रबोधचन्द्रोदय' ही कहा जायगा क्योंकि "दोनों ग्रंथों का विषय आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विश्लेषण है। दोनों के उद्देश्यों की पूर्ति आत्मज्ञान या आत्मप्रकाश के साथ मुक्ति में होती है, मुक्ति के लिए जिन-जिन साधनो की अनिवार्यता है उनका दोनों ग्रंथों में समानरूप से निरूपण किया गया है। मोक्ष की स्थिति—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि के उस पार है। जब तक इन अन्तरायों का उन्मूलन न होगा तब तक मुक्ति पथिक आगे न बढ़ सकेगा। इस सिद्धान्त को मिश्र और केशव दोनों ने कथोपकथनों द्वारा अभिव्यक्त किया है। भक्ति और वैराग्य के सम्बल को दोनो ने स्वीकार किया है। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता और जगत् की ब्रह्मरूपता को दोनों ने अद्वैतिक ढंग से निरूपण किया है। अद्वैत

ज्ञान का ही दूसरा नाम है—आत्मज्ञान। आत्मज्ञान की अवस्था मे स्वरूपस्थता प्राप्त होती है। स्वरूपस्थ ही मुक्ति सुख का अनुभव करता है। आत्मज्ञान या आत्म-प्रकाश के बिना मुक्ति संभव नहीं है।"* इसके अतिरिक्त 'विज्ञानगीता' मे नवधा भक्ति अथवा ब्राह्मणों की पूज्यता तथा मन और उसकी दशाओ का विवेचन आदि 'भागवत' के अनुसार है। कुछ स्थलों पर प्रकाशित विचार 'गीता' मे आए हुए विचारों से प्रभावित जान पड़ते हैं। केशव ने स्वतः उक्त ग्रंथों के प्रभावों को स्वीकार किया है—

कहे भागवत में असम, गीता कहे समान।
अप्रमान कौनहि करौ, कौनहि करौ प्रमान॥

(विज्ञानगीता)

सिद्धान्त विश्लेषण के अन्तर्गत कहीं-कहीं 'योगवाशिष्ठ' के दार्शनिक विचारों का समावेश मिलता है। 'विज्ञानगीता' मे ज्ञान प्रतिपादन के अवसरों पर दी गई राजा शिखीध्वज, प्रह्लाद, गाधिऋषि, शुकदेव आदि की कथाएँ 'योग-वाशिष्ठ' पर ही आधारित हैं। वशिष्ठ का पात्र होना भी इसी बात का प्रमाण है।

इस प्रकार संक्षेप मे केशवदास जी के अधिकाश ग्रंथों पर संस्कृत के परम्परा-गत राम-काव्यों, सस्कृत नाटकों, धर्म एवं दर्शन ग्रथों तथा साहित्यशास्त्र के विविध ग्रंथों के प्रभाव के दिग्दर्शन करा लेने के बाद निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि केशवदास जी अपने युग के अत्यन्त जागरूक महाकवि थे जो काव्य, दर्शन और काव्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा से पूर्ण अभिज्ञता रखते थे तथा जिन्होंने भाषाकाव्य की गतिविधि पर दृष्टि रखते हुए और उसकी आवश्य-कताओं को समझते हुए साहित्य-सृजन मे अपने आपको प्रवृत्त किया। संस्कृत साहित्य के इस प्रचुर प्रभाव को देखते हुए यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि केशव के काव्य में उनकी मौलिकता कुछ भी नही।

---

*हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव (पृ. ७४-७५)—डा० सरनामसिंह

उपसंहार

आचार्य कवि केशवदास का अध्ययन अभी तक हो नहीं सका है। जो कुछ भी सामग्री उनके संबंध मे हमे प्राप्त है वह भी एक पिटीपिटाई आलोचना की परंपरा मात्र कही जा सकती है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय कृत 'महाकवि केशवदास' अवश्य एक ऐसा ग्रंथ है जिसमे एक स्वस्थ्य और उचित दृष्टि से केशव के काव्य की विवेचना हुई है किन्तु वे भी केशव के संबंध मे बहुत कुछ कहना छोड गए हैं। हाँ, डा० हीरालाल दीक्षित द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध अवश्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो केशव के काव्य के अध्ययन को अत्यंत विकसित रूप मे हमारे सामने प्रस्तुत करता है। गत पृष्ठों में इतना कुछ कह जाने के बाद हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं से मेरा आग्रह है कि वे एक बार केशव के काव्य के अन्त: प्रवाह स्रोत के पास जायें और एक सुधी विवेचक और सहृदय की सामजस्य-बुद्धि से उस जल के गुण दोषों को भ्रम मे पडे हुए हिन्दी पाठकों के समक्ष यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करें। केशवदास की कविता चाहे जैसी भी हो किन्तु यह तो मैं दृढता के साथ कहूँगा कि वह हेय, त्याज्य और उपेक्षणीय कदापि नहीं।

आज की कविता की बात मै नहीं करता किन्तु भक्ति और रीतिकालीन काव्य-परपरा मे सूर और तुलसी के बाद केशव ही दृग्पथ मे आते हैं। उनकी कविता बहुवस्तुस्पर्शिणी है। राम-काव्य और कृष्ण-काव्य की दोनों धाराओं में उन्होंने अपना साहित्यिक योग दिया, तत्वचिन्तन का प्रकाशन अपने प्रसिद्ध 'विज्ञानगीता' नामक काव्य-नाटक मे किया, शास्त्रीय दृष्टि से मुक्तक और प्रबन्ध भी लिखे तथा रामचन्द्रिका महाकाव्य में प्रयोग वैचित्र्य प्रस्तुत किया और छन्दशास्त्र, नाटकीयता, रस, अलकार, वर्णनात्मकता, स्वच्छन्द प्रबन्धात्मकता, चरित्र-वैशिष्ट्य आदि विविध तत्वों की एकत्र विनियोजना की। उनका काव्य रस-अलकारमय है, रीति युक्त और रीति मुक्त है, उसमें भक्ति और ज्ञान रीति और नीति सभी विश्लेषित

हुए हैं, भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों की ओर कवि की दृष्टि रही है। चरित काव्य (वीरसिंहदेव चरित, जहाँगीरजसचन्द्रिका) उनके प्रबन्ध कौशल के प्रमाण हैं। संक्षेप में यह कि उस समय की काव्यगत विविधता यदि कोई देखना चाहे तो अकेले केशव की कविता में देख सकता है। अतएव, केशव रीतिकाल के सर्वप्रमुख प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं।